चन्दामामा
माँ–बच्चों का मासिक पत्र
1st August '52
6
KESAVA

Chandamama, August '52

Photo by A. L. Syed

अचल

चन्दामामा

विषय-सूची

इनके अलावा

मन बहलाने वाली पहेलियाँ, सुन्दर चित्र और कई प्रकार के तमाशे हैं ।

ग्राहकों को एक ज़रूरी सूचना

★

१. ग्राहकों को पत्र - व्यवहार में अपनी ग्राहक संख्या का उल्लेख अवश्य करना चाहिए। जिन पत्रों में ग्राहक-संख्या का उल्लेख न हो उन पर कोई ध्यान नहीं दिया जा सकता ।

२. पता बदल जाए तो तुरन्त नए पते के साथ सूचना देनी चाहिए।

३. प्रति नहीं पाई तो १० - वीं के पहले ही सूचित कर देना चाहिए। बाद को आने वाली शिकायतों पर कोई ध्यान नहीं दिया जाएगा।

—व्यवस्थापक, 'चन्दामामा'

वर्ष 3
अङ्क 12

अगस्त
1952

चन्दामामा

संचालक : चक्रपाणी

हरेक आदमी चाहता है कि दुनियाँ हमेशा उसे याद रखे। इसलिए वह दुनियाँ में एक न एक स्मृति-चिह्न छोड़ जाना चाहता है। जो व्यक्ति धनवान या शक्तिमान होता है वह सोचता है कि स्मृति-चिह्न जितना ही बहुमूल्य होगा लोग उसे उतना ही याद करेंगे। इसीलिए राजे-महाराजे बड़े-बड़े किले और महल बनाते हैं और सोचते हैं कि इनके जरिए उनका यश चिर-स्थाई बना रहेगा। इन किलों और महलों को बनाने के लिए वे बहुत से गन्दे काम करके दूसरों को सता कर रुपए कमाते हैं। उन बेचारों को नहीं सूझता कि इस तरह के स्मृति-चिह्न खड़े करने से लोग उनकी बड़ाई नहीं करेंगे और उन्हें कभी याद करेंगे भी तो घृणा के साथ। दुनियाँ की दौलत आदमी के साथ नहीं आती। अन्त में हरेक को अकेले खाली हाथ जाना पड़ता है। इस अङ्क की 'सराय' नामक कहानी में यही शिक्षा दी गई है।
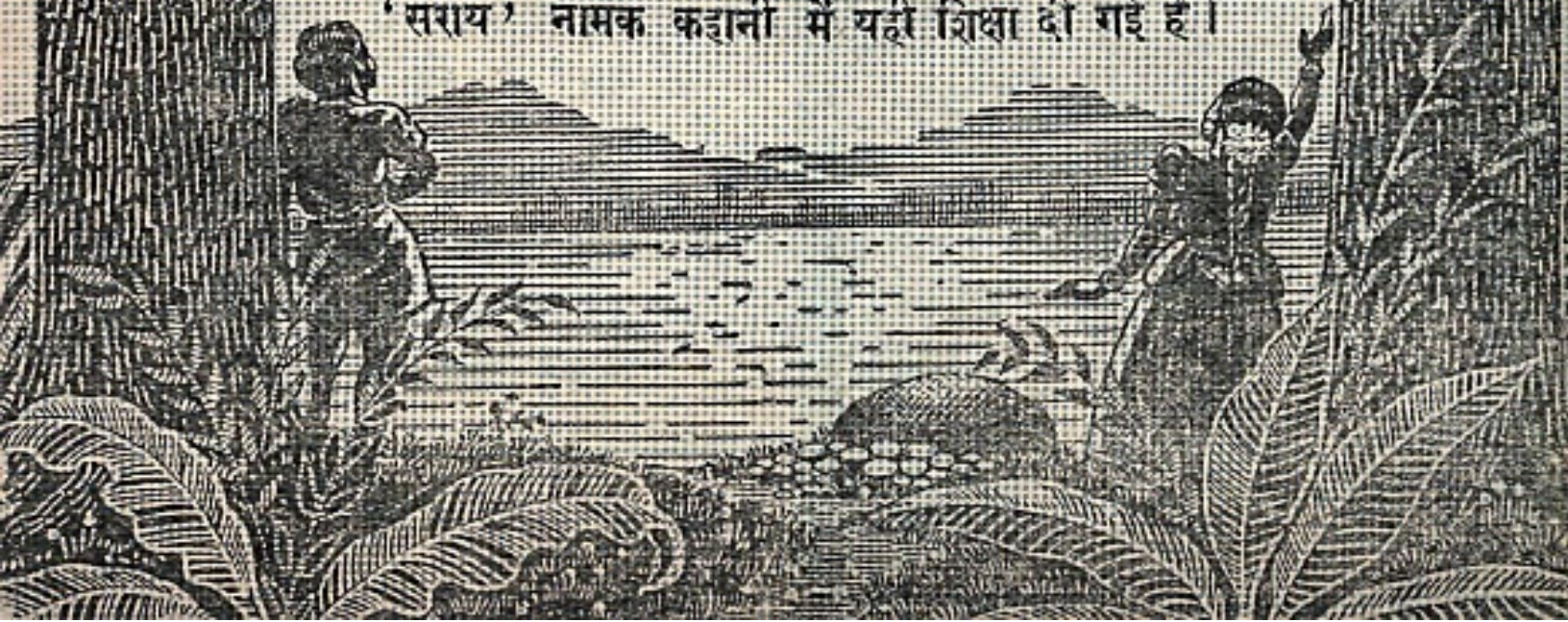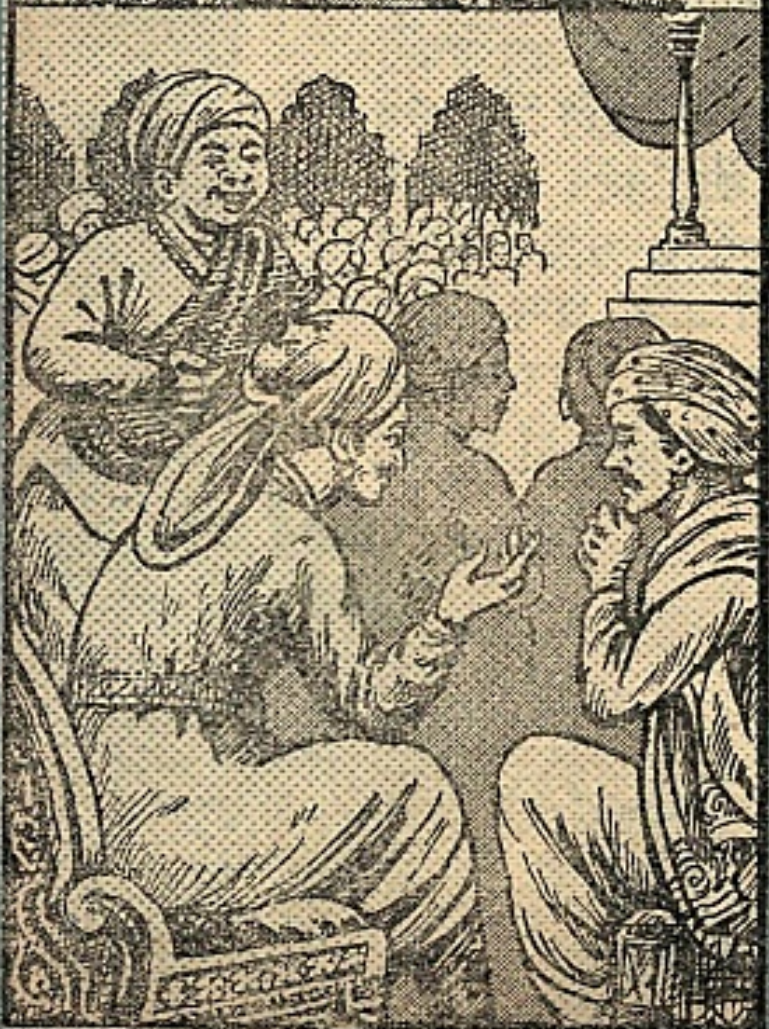
विदूषक

राजा के दरबार में
सुनो, विदूषक एक था।
बड़ा मसखरा, ढीठ वह
और बड़ा ही शोख था।

जितने दरबारी वहाँ,
देख उसे थे काँपते।
उसे दूर से देख कर
अपना रास्ता नापते।

लेता चुटकी खूब वह,
खूब उड़ाता था हँसी।
उसके मारे जान थी
सबकी आफत में फँसी।

दरबारी थे क्रोध से
बदला लेना चाहते।
पर न राह थी सूझती,
मन में रहे कराहते।

कृपा-पात्र था भूप का
चतुर विदूषक, इसलिए—
उसे न कुछ परवाह थी
कितने आए, चल दिए।

'बैरागी'

एक बार उसने किया
कुछ, जिससे नाराज़ हो,
राजा बोले—'पकड़ लो!
फौरन इस गुस्ताख को!'

सैनिक-गण आगे बढ़े,
पकड़ विदूषक को लिया।
बस, अब ठण्डा हो गया
दरबारी सबका जिया।

राजा बोले—'मूर्ख रे!
अन्तकाल अब निकट है!
मृत्यु-दण्ड तय हो चुका;
दोष तुम्हारा प्रकट है।

बोलो, मरना चाहते
हो तुम खुद किस ढङ्ग से?'
कहा विदूषक ने—'मरूँ
बन कर वृद्ध उमङ्ग से!'

यह सुन राजा हँस पड़ा।
उसे माफ भी कर दिया।
लेकर सुख की साँस यों
चतुर विदूषक बच गया।

मुख – चित्र

दुष्ट रुक्मी को इस तरह नीचा दिखाने के बाद भगवान कृष्ण ने बड़ी धूम-धाम के साथ रुक्मिणी का पाणिग्रहण किया। उसके बाद वे सारे देश की यात्रा करने निकले। उन्होंने जिन-जिन देशों में कदम रखा उन उन देशों के राजाओं ने अपनी लड़कियों से उनका ब्याह करना चाहा। उनके अनुरोध को भगवान न टाल सके। उन्होंने उन सब राजकुमारियों को अपनी पत्नी बनाया। इस तरह सत्यभामा, कालिंदी, मित्रविंदा, नाग्नजिति, भद्रा, लक्षणा आदि को भगवान के रनवास में स्थान मिला। इन सब में नाग्नजिति के विवाह की कथा बड़ी रोचक है। नाग्नजिति कोशल देश की राजकुमारी थी। उससे ब्याह करने की इच्छा करने वालों को एक शर्त पूरी करनी थी। उसके पिता के पास सात भयङ्कर बैल थे। उन सातों बैलों को जो अपने काबू में लाता उसी से उसका ब्याह हो सकता था। राजकुमारी से ब्याह करने की इच्छा से कितने ही बहादुर लोग दूर-दूर से आए; लेकिन उन बैलों को देखते ही डर कर भाग गए। ठीक ऐसे ही समय पर भगवान कृष्ण घूमते-घूमते उस राज में पहुँचे। नाग्नजिति के पिता ने बड़े प्रेम से उनका स्वागत किया। भगवान को देखते ही नाग्नजिति ने निश्चय कर लिया कि वह उनके सिवा और किसी से ब्याह न करेगी। जब कृष्ण को यह बात मालूम हुई तो उन्होंने नाग्नजिति की इच्छा पूरी करने के लिए राजा की शर्त मंजूर कर ली। वे उन खतरनाक बैलों के पास गए। उनको देखते ही वे बैल दुम उठा कर, अपने पैने सींगों से उन्हें मारने दौड़े। लेकिन भगवान कृष्ण ने बड़ी निपुणता से उन सातों को पकड़ कर पल भर में नाथ डाला। बस, उनकी सारी धमा-चौकड़ी खतम हो गई। यह देख कर नाग्नजिति के आनन्द का वार-पार न रहा। कोशलराज ने बड़े ठाठ-बाट से दोनों का ब्याह किया और सुन्दर रथों पर चढ़ा कर द्वारका भेज दिया।
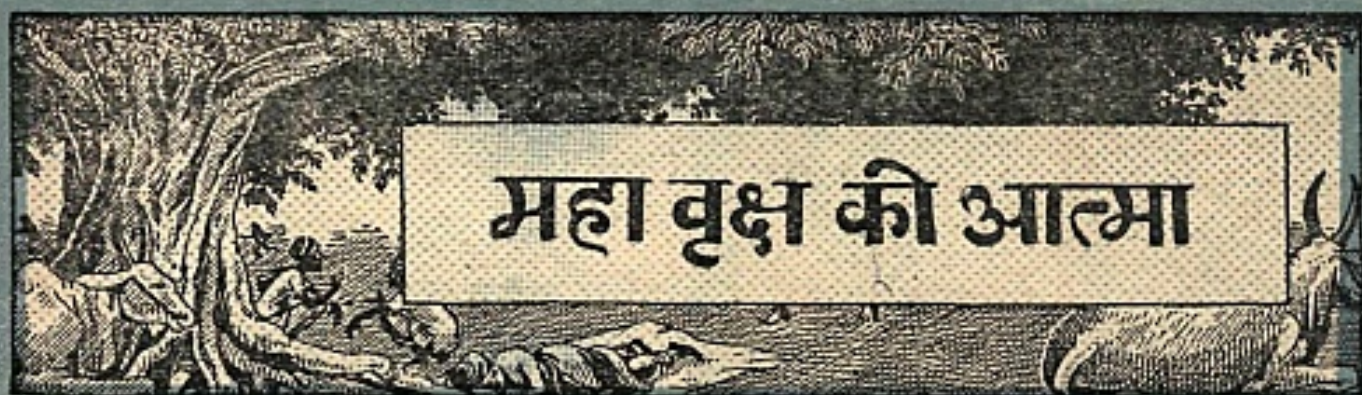
कई सौ साल पहले विक्रमपूर में एक बहुत बड़ा मन्दिर था। उस मन्दिर में तैंतीस मण्डप थे। कहा जाता है कि उस मन्दिर के अन्दर और बाहर कुल मिला कर ३३,३३३ मूर्तियाँ थीं।

यह उस समय की बात है जब वह मन्दिर नहीं बना था। उस मन्दिर की जगह वहाँ एक महावृक्ष खड़ा था। उसकी सघन और विस्तृत छाया में बटोही अपनी थकान दूर करते थे। आस-पास के गाँवों के चरवाहे और लड़के आकर वहाँ खेला करते थे। बड़े-बूढ़े लोग कभी-कभी वहीं बैठे पञ्चायत करते थे।

कुछ दिन बाद एक नदी पर पुल बनाने के लिए लकड़ी की ज़रूरत पड़ी और राजा ने उस पेड़ को काट डालने का हुक्म दिया।

उस पेड़ के नज़दीक के गाँव में सुधीर नाम का एक किसान रहता था। राजाज्ञा सुनते ही वह व्याकुल होकर राजा के पास गया और बोला—'इस अत्यन्त पुराने महावृक्ष को काट गिराना ठीक नहीं। यह अनेक प्राणियों को आश्रय देता है। कितने ही लोगों की थकान मिटा कर उन्हें आनन्द देता है। इस हरे-भरे पेड़ को काटने की क्या ज़रूरत है? हुजूर को जितनी लकड़ी की ज़रूरत हो मैं जुटा दूँगा। हुजूर मुझ पर कृपा करें और मेरी विनती मान लें।'

यह सुन कर राजा ने उसकी विनती मान ली और किसी तरह उस पेड़ की जान बच गई।

कुछ दिन बाद शाम को सुधीर अपने खेत से घर लौट रहा था कि उसे उस महावृक्ष के नीचे एक अत्यन्त सुन्दरी युवती दिखाई दी। उसका अलौकिक रूप देख कर वह चकित रह गया। उससे कुछ पूछना ही चाहता था कि देखते-देखते वह सुन्दरी गायब हो गई।

कुमारी रजनी

उस रात सुधीर को नींद नहीं आई। बेचारा बारंबार सोचने लगा कि वह युवती कौन थी? दूसरे दिन वह रोज़ की तरह खेत गया। लेकिन काम-काज में उसका मन न लगा। शाम को घर आते समय पेड़ के नीचे उसे फिर वह युवती दिखाई दी। उसे बहुत अचरज हुआ।
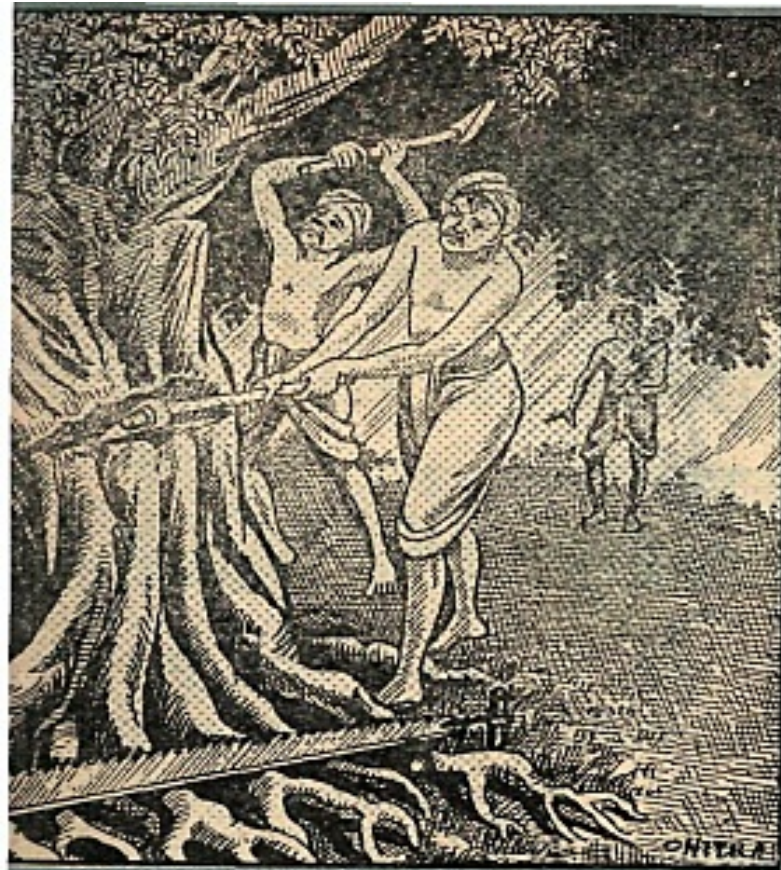
'सुधीर! मैं तुम्हें बहुत दिनों से जानती हूँ। मैं जानती हूँ कि तुम सद्वंश में पैदा हुए हो और तुम्हारा हृदय बहुत कोमल है। अगर तुम मेरी एक बात मानोगे तो मैं तुम्हारी ब्याहता होकर तुम्हारे घर में रह जाऊँगी।' उस युवती ने सुधीर से कहा, जिस बेचारे के मुँह से बात तक न निकल रही थी।

'अच्छा कहो, तुम क्या कहती हो?' आखिर साहस करके सुधीर ने पूछा।

'यही कि तुम मेरी पिछली कोई बात नहीं पूछोगे। जब समय आएगा तो मैं खुद तुम्हें अपनी सारी कहानी सुना दूँगी।' उस युवती ने कहा। सुधीर ने उसकी बात मान ली और घर ले जाकर उससे ब्याह कर लिया।

एक साल बाद उस किसान के घर में एक चाँद सा लड़का पैदा हुआ। लड़का धीरे-धीरे पाँच बरस का हुआ।

लड़का बड़े लाड़-प्यार से पाला-पोसा जा रहा था।

हठात् राजा ने एक नया हुक्म दिया—'विक्रमपूर में उस पेड़ को काट डालो और उस जगह एक मन्दिर बनवा दो। उस पेड़ की लकड़ी मन्दिर में लगा दो।'

मज़दूर आए और तेज़ कुल्हाड़ों से उस पेड़ को काटने लगे। उस हरे-भरे पेड़ को जो अनेक वर्षों से हज़ारों प्राणियों को आश्रय देता आ रहा था, जिसकी घनी छाँह में बच्चे-बूढ़े सभी सुख से बैठते थे, जिसको देखते ही आँखें ठण्डी हो जाती थीं, वे अपने

कुल्हाड़ों का निशाना बनाने लगे। राजा का हुक्म था! भला कैसे टाला जा सकता!

उसी रात को सुधीर को नींद की खुमारी में कुल्हाड़ियों की खट-खट आवाज़ सुनाई दी। वह चौंक कर उठ बैठा और देखा कि पत्नी उसकी बगल में बैठी हुई है। उसकी आँखों से आँसुओं की अविरल धारा बह रही है। उसने सुधीर के पैर पकड़ कर कहा—'प्यारे पति-देव! यह सपना नहीं है। मेरी बातों पर विश्वास करो। तुमने छः साल तक अपने वचन का पालन किया और मेरे बारे में कुछ नहीं पूछा। अब सब कुछ सुना देने का समय आ गया है। सुनो, मैं उस महावृक्ष की आत्मा हूँ जिसके नीचे मैं पहले तुम्हें दिखाई पड़ी थी। मैंने सोचा था कि अन्तिम दिनों तक सुख देकर तुम्हारा ऋण चुकाऊँगी। लेकिन भगवान को यह मंजूर न हुआ। उस पेड़ पर जो कुल्हाड़ी चल रही है, वह मेरी देह पर ही पड़ती है। मेरा अन्त अब निकट आ गया। इस चोट से मैं नहीं बच सकती। थोड़ी देर में वह पेड़ गिर जाएगा और मैं मर जाऊँगी। मैंने सोचा था कि अपने बच्चे को पाल-पोस कर बड़ा बना दूँगी। लेकिन यह मेरे भाग्य में न लिखा था। उसे प्रेम से पालना। भगवान तुम्हारी रक्षा करे। सुखी रहो! मैं जाती हूँ।' यह कह कर सुधीर की वह छः साल की सङ्गिनी अन्तर्धान हो गई।
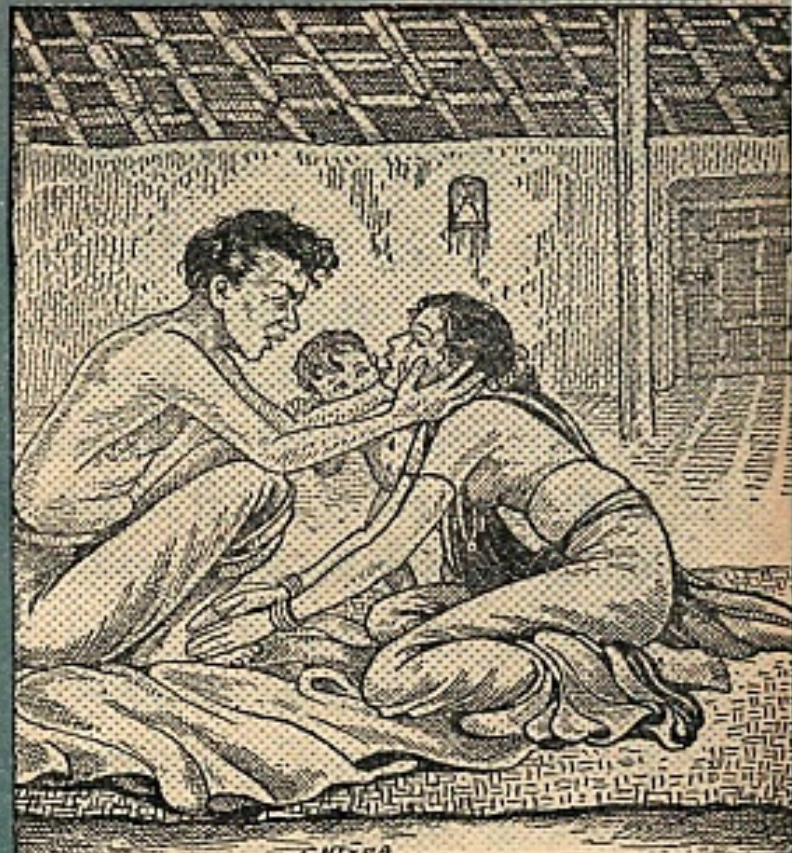
इतने में बच्चा भी जग गया और 'माँ-माँ!' पुकारता रोने लगा। बाप ने उसे गोदी में उठा लिया और चुमकारते हुए उस पेड़ की ओर ले चला। वहाँ जाकर उसने देखा कि पेड़ ज़मीन पर लोट रहा है। उसकी छिन्न-भिन्न शाखाएँ, कटे हुए हाथ-पैरों के समान दीख रही हैं। उसका सुविशाल तना धूल में पड़ा हुआ है!

सुधीर यह दृश्य देख कर बच्चे की तरह रोने लग गया। किसी को मालूम नहीं था कि वह इस तरह क्यों रो रहा है!

सवेरा हुआ। उस तने को उस जगह से हटाना था। इसलिए सैकड़ों आदमी उसे वहाँ से खिसकाने की कोशिश करने लगे। लेकिन वह तना टस-से-मस न हुआ। उस गाँव में जितने आदमी थे सब बुलाए गए। फिर भी कोई फ़ायदा न हुआ। आस-पास के गाँवों के लोग भी जमा हो गए। सब लोग यह अजब तमाशा देख कर दङ्ग रह गए।

उसी रात राजा ने भी एक सपना देखा। सपने में उसे उस महावृक्ष की सारी कहानी सुनाई पड़ी। राजा उठा। अब उसे मालूम हो गया कि सुधीर ने उसे पेड़ कटवाने से क्यों रोका था। लेकिन अब पछताने से क्या होता-जाता था?

राजा तेज़ी से उस पेड़ के पास पहुँचा और उसने सुधीर से माफ़ी माँगी। फिर पूजा-पाठ करके उस तने को वहाँ से हटाने की कोशिश की गई। लेकिन सब बेकार!

सुधीर ने अपने बेटे से कहा—'बेटा! ज़रा तुम माँ को बुलाओ तो! वह तुम्हें प्राणों से बढ़ कर चाहती थी। शायद तुम्हारी बात मान जाए।'

पिता के कहने से उस लड़के ने उस तने को छुआ और पुकारा—'माँ! माँ!' तना हिलने लगा।

वह तना जो सैकड़ों आदमियों की कोशिश से नहीं हिला था, उस छोटे बच्चे के छूते ही हिलने लगा। यह देख कर सब की आँखों से आँसू बहने लगे।

तब राजा का मन्दिर उस जगह बना और उस तने की लकड़ी का उसमें उपयोग हुआ। यह वही तैंतीस मण्डपों और ३३,३३३ मूर्तियों वाला मन्दिर था जो आठ सौ साल पहले विक्रमपूर में बना था।
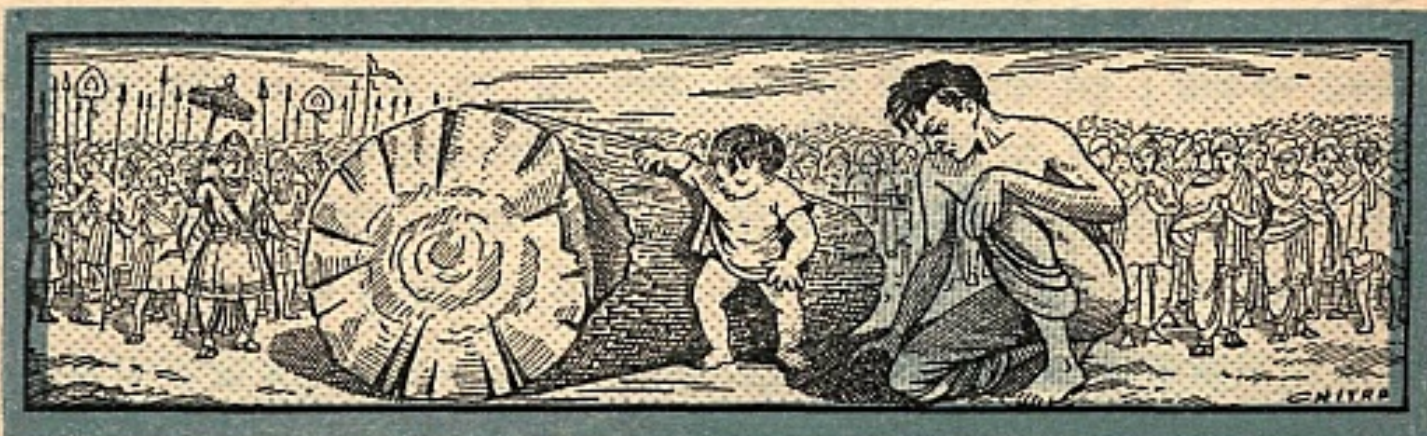
15

[दाढ़ी वाले के ज़रिए जुड़वाँ भाइयों का जन्म - रहस्य जान कर राक्षस फूला न समाया। वह बलि की तैयारी करने लगा। लेकिन इतने में राजकुमारियाँ अन्धी, लँगड़ी और लूली हो गईं। इससे क्रोधित होकर उसने दाढ़ी वाले, प्रदोष और निशीथ को सुरंग में ढकेल दिया, सरोवर के किनारे पहरे का इन्तज़ाम किया और गीध का रूप बना कर तीनों राजकुमारियों को लेकर उड़ गया। अब आगे पढ़िए।]

उदय जो अदृश्य रूप में था सोचने लगा कि अब क्या करना चाहिए? वह सुरङ्ग में जाना चाहता था। लेकिन उसे राजकुमारियों का कहना याद था कि सुरङ्ग में उसकी बुकनियाँ और अञ्जन वगैरह काम नहीं करते। फिर भी उसने सोचा—'चलूँ, एक बार कोशिश करके देखूँ तो सही।' यह सोच कर उसने उस जगह जाकर झाड़ियाँ हटा दीं। उसे नीचे जाने के लिए सीढ़ियाँ दिखाई दीं। वह आहिस्ते से नीचे उतरने लगा। दस सीढ़ियाँ उतरने पर उस पर से बुकनी का असर जाता रहा और उसे मामूली रूप मिल गया। लेकिन उदय इससे नहीं डरा। वह उतरता ही गया। थोड़ी दूर जाते ही वह दहल कर रुक गया। कदम आगे न बढ़ा सका। क्योंकि सीढ़ियों के नीचे दो खूँखार शेर बैठे हुए थे। उन शेरों के गलों से साँप लिपटे थे

और वे फुफकार रहे थे। यह भयानक दृश्य देख कर उदय आगे न बढ़ सका। उलटे पाँव सुरङ्ग से बाहर हो गया। बाहर आते ही वह फिर अदृश्य हो गया।

वहाँ से उदय सीधे सरोवर के पास गया। सरोवर के चारों ओर आग जल रही थी। राक्षस के पहरेदार सावधान बैठे हुए थे। उदय को नहीं मालूम था कि राजकुमारियों को राक्षस उठा ले गया है। लेकिन सरोवर के हंसों को गिनने से उसे मालूम हुआ कि अडतालीस के बदले उसमें सिर्फ़ पैंतालीस हंस हैं। यह देख कर उसे शक हुआ। उसने सोचा कि तीनों राजकुमारियाँ यहाँ नहीं हैं और शायद वे किसी खतरे में पड़ गई हैं। लेकिन वह कर क्या सकता था? किससे पूछने से सच्चा हाल मालूम होता? मामूली रूप धरने पर राक्षस के पहरेदार झट उसे पकड़ लेते। सरोवर में घुस कर हंस का रूप धर लेने में कठिनाई यह थी कि चारों ओर आग जल रही थी। उस आग की दीवार को पार करना नामुमकिन था। इस तरह उदय असमञ्जस में पड़ गया। आगे उसने क्या किया, इसका विचार हम थोड़ी देर के लिए रोक रखें और उधर चल कर देखें कि राजकुमारियों का क्या हाल है?

राक्षस ने राजकुमारियों को ले जाकर एक घने जङ्गल में छोड़ दिया था। लेकिन छोड़ने के पहले उसने उन तीनों को गूँगी बना दिया था जिससे वे उसका भेद किसी दूसरे पर प्रकट न कर सकें। इस तरह यह निश्चय करके कि वे अब उसका कुछ भी नहीं बिगाड़ सकतीं, उसने उन्हें जङ्गल में छोड़ दिया और अपनी राह चला गया। राजकुमारियाँ तो पहले ही अन्धी, लँगड़ी और लूली हो गई थीं, अब गूँगी भी हो गईं और बहुत सोच करने लगीं। वे किसी

तरह जङ्गल से बाहर होना चाहती थीं। लेकिन अकेली सुहासिनी, लँगड़ी सुभाषिणी और अन्धी सुकेशिनी को कैसे कहाँ ले जाती ?

संयोग से एक राजा उस दिन जङ्गल में शिकार खेलने आया। उसने इन तीनों राजकुमारियों को देखा। ऐसी सुन्दर लड़कियों को अङ्गविहीन देख कर उसे बहुत अचरज हुआ। 'कौन हो तुम लोग ? इस डरावने जङ्गल में क्यों अकेली घूम रही हो ?' उसने पूछा।

लेकिन वे राजकुमारियाँ ज़बान न खोल सकीं और उसे इशारों से समझाने की कोशिश करने लगीं।

यह देख कर वह राजा समझ गया कि ये गूँगी हैं। उसे बहुत दया आई। उसने उन्हें ढाढ़स बँधाते हुए कहा—'मैं मालव देश का राजा हूँ। मेरा नाम प्रताप-सिंह शायद तुमने सुना ही होगा। तुम लोग डरो नहीं। मेरे साथ आओ। मेरे राज में सुख से दिन बिताना। मैं तुम्हें किसी तरह की तकलीफ़ न होने दूँगा। देखने से तो तुम लोग किसी उच्च-वंश की कुमारियाँ जान पड़ती हो। शायद किसी दुर्घटना के कारण ऐसी दुर्दशा में पड़ गई होगी।' इस तरह उसने उन्हें बहुत धीरज दिलाया।

उसकी बातें सुन कर राजकुमारियों के चेहरे खिल गए। डूबते को तिनके का सहारा मिल गया। तीनों ने सङ्कोच से सिर झुका लिए। इससे प्रतापसिंह ने समझा कि उन्होंने उसकी बात मान ली। बस, वह उन तीनों को अपने घोड़े पर चढ़ा कर विकट जङ्गल पार कराने लगा।

थोड़ी देर बाद तीनों राजकुमारियों को लेकर राजा अपने महल में पहुँच गया। तुरन्त उसने अपने पण्डितों को बुला कर

कोई ऐसा उपाय बताने की आज्ञा दी जिस से राजकुमारियों की पूरी कहानी उसे मालूम हो सके।

पण्डित लोग दिमाग लड़ाने लगे। आखिर एक पण्डित को एक उपाय सूझ गया। उसने तीनों राजकुमारियों को फर्श पर बिठा दिया और टोकरी भर बालू मँगा कर उनके सामने बिछवा दिया। फिर उसने सुहासिनी से कहा कि उस बालू पर अपना हाल लिखो। लेकिन सुहासिनी ने आँसू बहाते हुए सिर हिलाया, जैसे कहती हो कि हम पढ़ना-लिखना नहीं जानतीं।

उस पण्डित ने जो सोच रहा था कि उसे बहुत अच्छा उपाय सूझ गया, यह देख कर मुँह लटका लिया।

'महाराज! मैंने कितना ही दिमाग लड़ाया। लेकिन इससे बढ़ कर मुझे कोई उपाय नहीं सूझता। अब मैं लाचार हूँ। मुझसे कुछ नहीं हो सकता।' उस पण्डित ने शरमा कर अपनी लाचारी प्रगट की।

तब महाराज ने उस पण्डित को जाने की इजाज़त दे दी और नौकरानियों को बुला कर कहा—'इन देवियों की खूब सेवा करना और किसी चीज़ की कमी न होने

देना ! इनकी हिफ़ाज़त का ख्याल रखना और जतन से देख-भाल करते रहना।'

अब तीनों राजकुमारियाँ उस महल में सुख से रहने लगीं। उन्हें किसी तरह की तकलीफ न थी।

*   *   *

उदय पिछली बार जब श्रावस्ती गया था तो उसे एक राज से होकर जाना पड़ा था। बीच में एक जगह उसने एक अन्धे की आँखों का इलाज कर दिया था, जिससे खुश होकर उस देश के राजा ने उसे उसी राज में रह जाने को कहा था। यह वही राजा प्रतापसिंह था जो जुड़वीं बहनों की रक्षा करके अपने महल में ले आया। प्रताप-सिंह का विश्वास था कि अपने बचन के अनुसार उदय लौट कर फिर उसके पास आएगा। इसीलिए राजकुमारियों को देखते ही उसने मन में सोचा था कि उदय के द्वारा इन तीनों का इलाज करवा देंगे।

यों एक हफ्ता बीत गया। सहसा उदय किसी काम से बिना कहे-सुने उस राज में आ धमका। उसने राजा से भेंट की।

यों अचानक उदय को आया देख कर राजा को बहुत खुशी हुई। उसने सोचा कि उदय अपने बचन के अनुसार उस राज में रह जाने के लिए आया है। 'दोस्त! आओ! मैं तुम्हारी ही राह देख रहा था। बड़ी खुशी की बात है। तुम अच्छे मौके पर आए। कहो! कुशल से तो हो!' यह कहते हुए उसने उदय का स्वागत किया।

उदय ने कहा—'मैं जिस काम से निकला था, वह अभी पूरा नहीं हुआ। इसी से मैं आपकी मदद माँगने आया हूँ।'

'क्या कहा! मेरी मदद? अच्छा! बोलो! मैं तुम्हारी क्या मदद कर सकता हूँ? बोलो, मैं तुम्हारे लिए कुछ भी उठा नहीं रखूँगा।' राजा ने जवाब दिया।

तब उदय ने अपने जन्म का रहस्य उसे बता दिया। आज तक की बीती हुई पूरी कहानी में से उसने कुछ भी छिपाया नहीं। उसके पास जो अञ्जन-भस्म वगैरह थे, उन सबका रहस्य भी बता दिया।

राजा ने सब कुछ ध्यान से सुना और पूछा—'ठीक है! लेकिन मैं तुम्हारी क्या मदद कर सकता हूँ?'

तब उदय ने कहा—'अपने दरबारी चित्रकार को मेरे साथ भेज दीजिए! मैं उसे एक हफ्ते में लौटा ले आऊँगा।'

राजा ने तुरन्त उसकी बात मान ली। दूसरे ही दिन उदय चित्रकार को अपने साथ लेकर राक्षस के महल में गया। वहाँ जाकर उसने चित्रकार पर सफेद बुकनी छिड़क दी और उसे भी अदृश्य बना दिया। फिर दोनों मिल कर सरोवर की तरफ गए। चित्रकार ने अदृश्य रूप में रह कर राक्षस के पहरेदारों के बहुत से चित्र बनाए। यों एक हफ्ता हो गया। तब दोनों मालव-देश लौट चले।

राजा के महल में पहुँचने के बाद चित्रकार ने अपने बनाए हुए सभी चित्र एक जगह करीने से रख कर उदय को दिखाए। दोनों एक एक चित्र को देखते आ रहे थे। इतने में चित्र-कार नें एक चित्र की ओर इशारा करके बताया कि वह चित्र ठीक उसी के जैसा लगता है। तब उदय ने कहा कि यही वह चाहता भी है और पूछा—'इसके जैसा भेस बनाने पर कोई मुझे पहचान नहीं सकेगा न?' चित्रकार ने

कहा—'हाँ ! तब तो कोई आपको पहचान नहीं सकेगा।'

तुरन्त उदय का मन खुशी से भर गया। चित्रकार की मदद से उसने तुरन्त राक्षस के उस नौकर का सा भेस बना लिया। उसने बार बार आइने में देखते हुए सोचा—'वाह ! भेस तो अच्छा बन गया है !' दूसरे ही दिन वह राजा से छुट्टी लेकर राक्षस के सरोवर की तरफ चला।

सरोवर के पास पहुँच कर उसने बुकनी की पुड़िया के लिए जेब टटोली ! लेकिन यह क्या ? उसने पुड़िया कहीं खो दी थीं ! हाय ! अब वह क्या करे !

उदय बड़े सोच में पड़ गया। लेकिन कुछ देर बाद धीरज धर कर वह एक झाड़ी में छिप गया और शाम तक वैसे ही रह गया।

धीरे धीरे अँधेरा हो गया। राक्षस के नौकरों का एक नया दल आया। उसने पुराने दल को, जो अब तक पहरा दे रहा था छुट्टी दे दी। तब उस पुराने दल वाले फ़ुरसत पाकर सुरङ्ग की ओर चले और एक-एक कर अन्दर घुस गए। आखिरी राक्षस
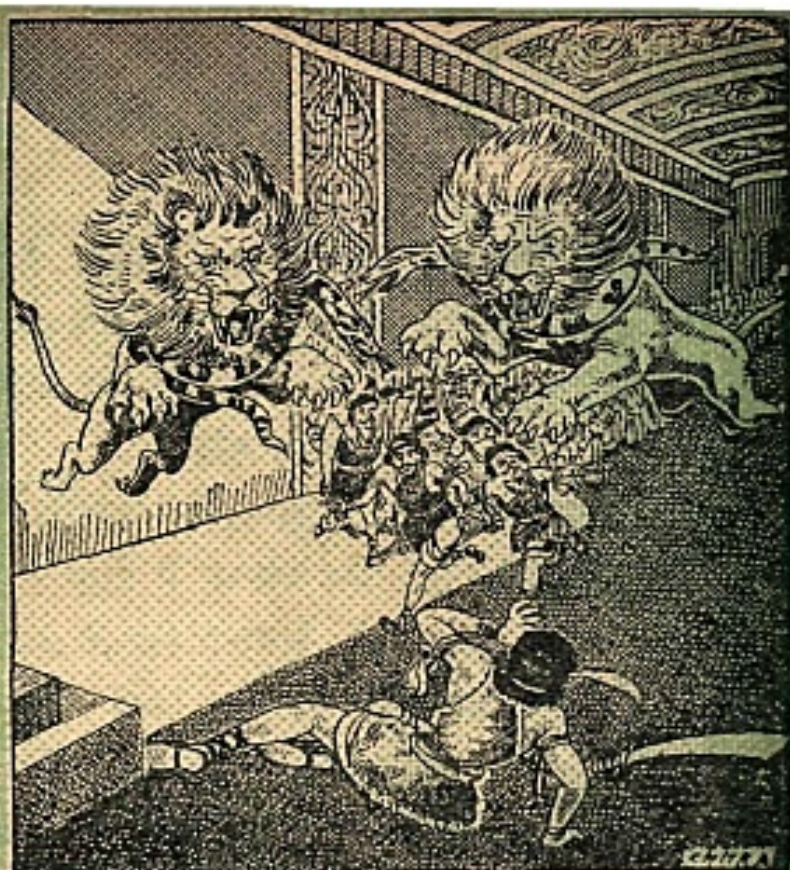
जब अन्दर जाने लगा तो उदय भी चालाकी से उसके साथ अन्दर घुस गया।

उदय मन ही मन बहुत डर रहा था कि कहीं उसका भेद खुल न जाए और राक्षस के नौकर उसे पकड़ न लें। लेकिन उसके सौभाग्य से ऐसा नहीं हुआ। उसका भेस देख कर उन लोगों ने समझा कि वह भी उन्हीं में से एक है।

इस बार उदय निडर होकर जल्दी-जल्दी सीढ़ियों से उतरा और उन शेरों की बगल से होकर जाने लगा। उसका विश्वास था कि राक्षस के नौकरों के साथ मिल कर, उन्हीं के जैसा भेस बना कर जाने से वे

उसे पहचान नहीं सकेंगे। लेकिन शेरों को उसकी बू लग गई। वे एकबारगी गरज कर उस पर टूट पड़े। यह देख कर उदय चीख पड़ा और बेहोश हो गया।

यह देख कर राक्षस के नौकरों ने तलवारें खींच लीं और पल भर में दोनों शेरों का काम तमाम कर दिया। फिर वे उदय के चारों ओर खड़े हो गए और कहने लगे—'ये आखिर हमीं पर टूट पड़े! अच्छा ही हुआ जो इन्हें मार डाला!' फिर उन्होंने उदय की सुश्रूषा की और उसके घावों पर (जो सङ्गीन नहीं थे) पट्टियाँ बाँधीं। जब उदय को अच्छी तरह होश आ गया तो उन्होंने कहा—'भाई! जब तक तुम्हारे घाव न भर जाएँ, तुम यहीं रह कर आराम करो। तुम्हारा काम भी हम लोग कर लेंगे।'

'अच्छा! लेकिन मेरी और भी एक भलाई कर दो! मेरे खाने का इन्तज़ाम भी कर जाओ! क्योंकि इन घावों के कारण मैं कुछ दिन बिलकुल चल-फिर नहीं सकूँगा।' उदय ने उनसे कहा। 'यह कौन सी बड़ी बात है!' यह कह कर वे लोग चले गए। थोड़ी देर बाद एक राक्षस उदय के लिए खाना ले आया।

धीरे धीरे सबेरा हो गया। रात को जिन लोगों ने पहरा दिया था वे आराम करने आए। उन्हें भी सारा किस्सा मालूम हो गया था। इसलिए उन्होंने आकर उदय को अपनी खुशी जताई। आखिर वे भी खा-पी कर लेट रहे और सो गए। शाम को वे उठ कर चले गए।

ठीक आधी रात के वक्त राक्षस लौट आया। सुरङ्ग में आते ही उसने अपने दोनों शेरों को मरा पड़ा देखा। 'किसने ऐसा काम किया है?' कह कर गरजते हुए वह उस जगह आया जहाँ उदय सो रहा था। [और भी है]
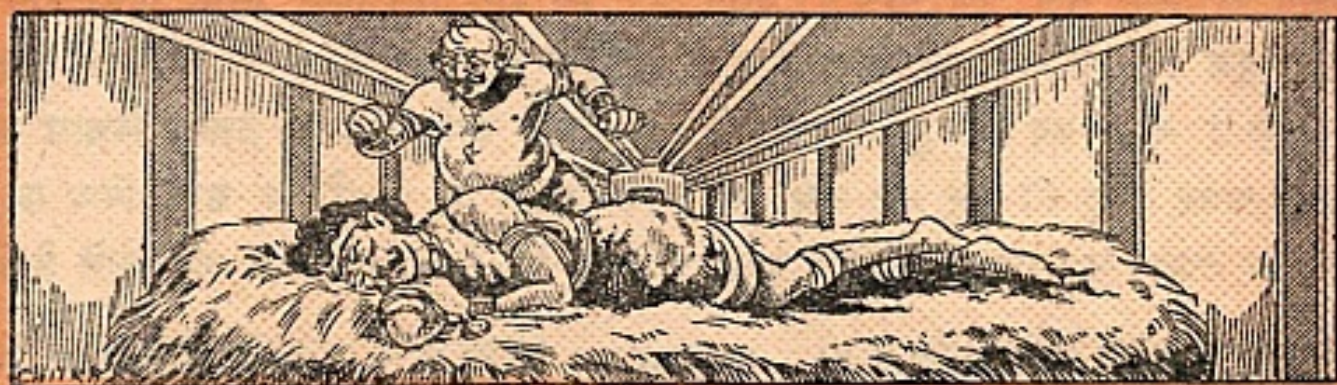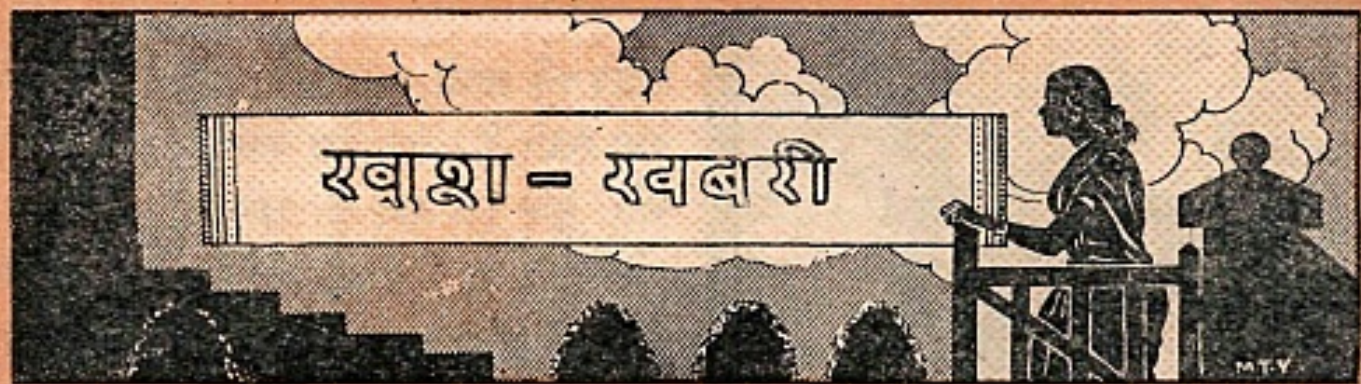
कमलपूर में रामनाथ नाम के एक नए डाक्टर आकर रहने लगे। उन्होंने काले तख्ते पर सफेद अक्षरों में अपना नाम और उपाधि लिखाई और वह तख्ता फाटक पर लटका दिया। अब आने-जाने वाले उस तख्ते की ओर देखने लगे। फिर भी कोई उनसे इलाज कराने नहीं आया।

'न जाने, मैंने किस साइत में यहाँ तख्ता टांगा था। मालूम होता है, अब मुझे इस गाँव से बोरिया-बिछौना उठा कर जाना ही पड़ेगा!' एक दिन डाक्टर बैठे-बैठे मन में यों सोच ही रहे थे कि इतने में उनके फाटक के पल्ले ढकेल कर एक औरत जल्दी-जल्दी अन्दर आ गई।

उस औरत को देखते ही डाक्टर ने मन ही मन फूल कर उसका स्वागत किया और पूछा कि 'कौन सी बीमारी है?'

उस औरत ने कहा—'मुझे किसी तरह की बीमारी नहीं। मैं आपको बुला ले जाने आई हूँ। मेरे पति दस दिन से बीमार हैं। आज अचानक उनकी तबीयत बहुत खराब हो गई है। तुरन्त मेरे घर चलिए और मेरे सुहाग की रक्षा कीजिए! मैं आपका एहसान कभी नहीं भूलूँगी।'

तब डाक्टर ने कहा—'इस में क्या रखा है? इसीलिए तो मैंने तख्ता लटका रखा है। चलिए!' यह कह कर वह उस औरत के घर गया।

उस औरत का नाम काँता था। उसके पति का नाम शङ्कर था। डाक्टर ने शङ्कर की जाँच करने के बाद कहा—'घबराने की कोई बात नहीं। हृदय की गति ज़रा मन्द हो गई है। एक नए किस्म का इञ्जक्शन दूँगा। बस, आराम हो जाएगा।' यह कह कर उसने एक पुर्ज़ी पर कुछ लिखा और कांता को देकर कहा—'यह दवा तुरन्त मँगवा लीजिए!'

रुक्मिणी बाई

तब कांता ने कहा—'डाक्टर साहब! मेरे पास तो कानी-कौड़ी भी नहीं है। उनके चङ्गा होते ही चुका देंगे। आगे आपकी कृपा!' यह कह कर गिड़गिड़ाने लगी।

'कहाँ मैंने समझा था कि मरीज़ मिल गया! यहाँ अपनी जेब से पैसा निकालना पड़ रहा है!' डाक्टर ने सोचा। मन में हुआ कि कह दें—'दवा मैं खरीद कर नहीं दे सकता! यह कहाँ का रिवाज है!' लेकिन फिर सोचा—'कर्ज के तौर पर दे दूँ! फीज़ देते वक्त चुका देंगे। समझ लिया कि पैसा नहीं दिया। फिर भी मेरी बड़ाई करेंगे ही। दस आदमियों से कह देंगे कि डाक्टर साहब बड़े अच्छे आदमी हैं। गरीबों पर बड़ी दया रखते हैं। तब मेरा कारोबार चल पड़ेगा और मुझे इस गाँव से जाने की नौबत न पड़ेगी।' यह सोच कर उन्होंने अपनी जेब से दो रुपए निकाले और उस औरत को दिए।

दस दिन के बाद शङ्कर को आराम होने लगा। धीरे-धीरे वह चङ्गा हो गया। आखिर एक दिन डाक्टर ने कांता से कहा—'अब तुम्हारे पति चङ्गे हो गए! लेकिन एक बात याद रखो, उन्हें दिल की बीमारी है। इसलिए किसी तरह की खुश-खबरी हो या बुरी खबर। उन्हें अचानक नहीं सुनानी चाहिए। नहीं तो दिल की धड़कन के रुक जाने का अन्देशा है।' यों उसे चेतावनी देकर डाक्टर चले गए। कांता ने भी निश्चय कर लिया कि इस विषय में वह बहुत सावधान रहेगी।

एक हफ्ता हो गया। एक दिन कांता एक तार लेकर डाक्टर के घर दौड़ी हुई आई। 'डाक्टर साहब! इस तार में बहुत बड़ी खुश-खबरी है। मैंने अभी अपने पति से नहीं कही। आपकी चेतावनी मुझे याद थी। इसलिए पहले आपकी सलाह लेने आई।' यह कह कर उसने तार डाक्टर के हाथ में रख दिया। डाक्टर वह तार पढ़ते ही उछल पड़े और

बोले—'यह क्या? तुम्हारे पति को लाटरी में पचास हजार मिल गए! तुम्हारे भाग का क्या कहना है!' लेकिन तुरन्त उनके मन में थोड़ी डाह पैदा हुई और उन्होंने सोचा—'कुछ लोगों को यों ही मुफ्त की दौलत मिल जाती है और मेरे जैसे अभागों को दिन-रात मेहनत करने पर भी फीज़ नहीं मिलती!'

कांता मन-ही-मन फूली न समा रही थी। वह ताड़ न सकी कि डाक्टर मन में क्या सोच रहे हैं! उसने कहा—'बाबूजी! मुझे नहीं सूझता कि यह खुश-खबरी उन्हें कैसे सुनाऊँ? आपकी चेतावनी याद करके मैं बहुत घबरा रही हूँ।'

तब डाक्टर ने कहा—'अच्छा! मैं थोड़ी देर में आऊँगा। इधर-उधर की बातें करने के बाद खुद तुम्हारे पति को यह खबर सुनाऊँगा। तब तक तुम चुप्पी खा जाओ!'

'अच्छा! ऐसा ही करूँगी!' यह कह कर कांता घर चली गई।

'कैसा खुश-नसीब है यह! कल तक कहाँ दवा-दारू का भी ठिकाना न था। आज दौलत-मन्द बन बैठा! मैंने इसकी जान बचाई। इसलिए यह मुझे जितनी भी फीज़ दे थोड़ी ही होगी। कम से कम पाँच सौ माँगूगा! पीछे देखा जाएगा!' यों सोचते हुए डाक्टर थोड़ी देर बाद शङ्कर के घर पहुँच गए।

वहाँ जाकर डाक्टर ने पूछा—'तबीयत कैसी है!' तब शङ्कर ने कहना शुरू किया—'डाक्टर! आप बड़े अच्छे आदमी हैं। आप जैसा दयालु आदमी विरले ही ही हजारों में एकाध मिलता है। इन दिनों तो डाक्टर पैसे जेब में डाले बिना बातें भी नहीं करते। लेकिन आपने मुफ्त में मेरा इलाज ही नहीं किया; बल्कि दवा के पैसे भी अपनी गाँठ से दिए। मैं आपका एहसान कैसे चुका सकता हूँ?' 'भैया! सब दिन एक समान नहीं जाते! तुम्हारे भी अच्छे

दिन आएँगे।' डाक्टर ने दूर की कौड़ी उड़ाते हुए कहा।

'न जाने, वे दिन कब आएँगे?' शङ्कर ने निराश-भाव से कहा। 'कौन कह सकता है? जब भाग्य पलट जाता है तो किसी बात की कमी नहीं होती! लाटरी में कितने लोगों ने रुपए नहीं जीते?' डाक्टर ने कहा।

'लाटरी! लाटरी तो उन लोगों के लिए है जिनकी किस्मत अच्छी होती है! मैंने भी कुछ दिन पहले एक दोस्त के ज़ोर डालने से लाटरी का एक टिकट खरीदा था। लेकिन मुझे कहाँ कुछ मिला?' शङ्कर ने अपना अफसोस जताया। 'यों निराश नहीं होना चाहिए! मान लो कि तुम्हें आज उस लाटरी के पचास हज़ार रुपए मिल गए! तो तुम मेरी फीज़ के दो सौ देकर तीन सौ और ईनाम के तौर पर दोगे?' डाक्टर ने पूछा।

यह सुन कर शङ्कर ने कहा—'अगर मुझे सचमुच पचास हज़ार मिल गए तो सौ, पाँच सौ की बात ही क्या? मैं आपको आधी रकम याने पचीस हज़ार दे डालूँगा। दिल्लगी न समझिएगा। कसम खाकर कहे देता हूँ!'

डाक्टर तो सिर्फ पाँच सौ की आस लगाए बैठा था। पचीस हज़ार का नाम सुनते ही खुशी से पागल हो गया। उसे इतनी खुशी हुई कि मुँह से सिर्फ इतना ही निकला—'क्या कहा? पचीस हज़ार!' सहसा उसके दिल की धडकन रुक गई और मौत हो गई।

डाक्टर को बेजान होकर झुकते देख कर शङ्कर हक्का-बक्का रह गया। कांता रोने लगी। अड़ोसी-पड़ोसी दौड़े आए।

तब काँता ने उन सबको लाटरी की बात बताई और कहा—'डाक्टर बेचारे आपको खुश-खबरी देने आए। आपकी खुश-खबरी ही उनके लिए मौत बन गई।'

तब शङ्कर ने कहा—'बेचारे मुझे जिस आफत से बचाने आए थे उसमें खुद फँस गए! भगवान की लीला!'

किसी समय देवपूर के राज पर अक्रमसिंह नाम का राजा राज करता था। वह जन्म से ही निर्दयी और धूर्त था। उस के पास एक बड़ी सेना थी, जिसका वह लोगों पर अत्याचार करने और दूसरे राज्यों को जीतने में उपयोग करता था।

उस में बड़ाई करने के योग्य कोई बात न थी। फिर भी पण्डितों और कवियों से अपनी बड़ाई कराने का अक्रम को बड़ा शौक था।

उन्हीं दिनों धर्मपाल नाम का एक पण्डित रहता था जिसका यश देवपूर में ही नहीं, आस-पास के राज्यों में भी फैल रहा था। धर्मपाल स्वार्थी या लालची न था। संसार में किसी चीज़ का उसे लोभ न था। धन की भी चाह नहीं थी। वह निस्वार्थ-भाव से अपने छात्रों को पढ़ाता-लिखाता था और राजाश्रय की इच्छा किए बिना ही गरीबी में अपने दिन काट रहा था।

धीरे-धीरे धर्मपाल की बड़ाई अक्रम ने भी सुनी। सुन कर भक्ति और श्रद्धा के बदले उसके मन में बड़ी जलन पैदा हुई। उसने सोचा कि किसी न किसी उपाय से धर्मपाल को काबू में कर लेना और नीचा दिखाना चाहिए।

इसलिए उसने एक दिन उसे अपने दरबार में बुलवाया और कहा—'इधर तुम्हारे बारे में बड़ी बुरी खबरें सुनने में आ रही हैं! क्या बात है?'

उसका कहना सुन कर धर्मपाल स्तब्ध रह गया। वह जानता था कि राजा बड़ा धूर्त और निर्दयी है! इसलिए उसने नम्रता-पूर्वक कहा—'हुजूर! मेरे बारे में! मैं तो सरकार के राज के एक कोने में शांति-पूर्वक अपने दिन बिता रहा हूँ।'

लेकिन उसका यह उत्तर सुन कर राजा आग-बबूला हो गया। उसने कहा—'हम

तेरा ढोंग अच्छी तरह जानते हैं। हम खूब जानते हैं कि तू पढ़ाने-लिखाने के बहाने लोगों को राजद्रोह की शिक्षा दे रहा है! खबरदार!'

राजा की ये जोश भरी बातें सुन कर धर्मपाल बहुत व्याकुल हो गया। वह नहीं समझ सका कि राजा को अचानक उस पर इतना गुस्सा क्यों आ गया है। इसलिए उसने दीन-स्वर में कहा—'हुजूर! मैं राजद्रोह के बारे में बिलकुल नहीं जानता। मैं तो अपने छात्रों को शास्त्र-पुराण पढ़ाते हुए चुपचाप दिन काटता हूँ।' इस बार अक्रम का गुस्सा और भी बढ़ गया। वह सच्चा क्रोध तो था नहीं। इसलिए उसके बढ़ा लेने में अचरज की कौन सी बात थी!

'तुम्हारा कहना है कि तुम शास्त्र-पुराण पढ़ा कर दिन काटते हो और राजद्रोह के बारे में बिलकुल नहीं जानते। तुम सच कहते हो तो आओ! हम तुम से तीन सवाल करेंगे। उनका जवाब दो!' अक्रम ने कहा।

'जो आज्ञा! महाराज!' धर्मपाल ने सर झुका कर कहा।

इस पर राजा ने मूँछें ऐंठ कर कहा—'लेकिन सुनो! तुम हमारे तीनों सवालों का जवाब नहीं दे सकोगे तो तुम्हारा सिर काट कर किले के कँगूरे पर लटका दिया जाएगा। मेरे सवाल गौर से सुन लो! पहला सवाल यह है कि इस मुकुट-सहित हमारे सिर की कितनी कीमत होगी! कीमत में कौड़ी का भी फर्क नहीं पड़ना चाहिए! दूसरा सवाल यह है कि इस संसार की प्रदक्षिणा कर आने में हमें कितना समय लगेगा? एक मिनट का भी फर्क न पड़े! तीसरा सवाल है, तुम्हारे जवाब सुनते वक्त हम अपने मन में क्या सोचते होंगे? साफ साफ बताओ जिससे

नादान बच्चे भी आसानी से समझ जाएँ !'

ये सवाल सुन कर सब लोग दङ्ग रह गए। इनका जवाब देना आदमी के बूते के बाहर की बात थी। धर्मपाल के माथे पर पसीने की बूँदें छलकने लगीं। उसने इन सवालों के जवाब सोचने के लिए एक हफ्ते की मोहलत माँगी। अक्रम ने उसकी विनती मंजूर कर ली।

धर्मपाल लौट कर अपने गाँव चला गया। उसने अनेक पोथी-पत्रे उलटे और बहुत माथा-पच्ची की। दूसरे पण्डितों से भी पूछा। लेकिन कोई इन सवालों का जवाब न बता सका।

सात दिन बीत गए। धर्मपाल राजा के दरबार में हाज़िर होने चला। उसके छात्रों और ग्राम-वासियों ने ज़ार-ज़ार रोते हुए उसे विदा किया। वह सोच में डूबा हुआ आ रहा था कि गाँव के बाहर उसे एक गड़रिया मिला। उसने उसकी चिन्ता का कारण पूछा।

धर्मपाल ने सारी कहानी उसे कह सुनाई। सुन कर गड़रिया ठठा कर हँस पड़ा और बोला—'मैं आपके तीनों सवालों का जवाब दूँगा। आप अपने कपड़े मुझे दे दीजिए। बाकी सारा भार मुझ पर छोड़ दीजिए और निश्चिन्त हो जाइए!'

पहले तो धर्मपाल ने उसकी बात पर विश्वास न किया। लेकिन बहुत आग्रह करने पर उसने उसकी बात मान ली। उस गड़रिए से धर्मपाल की सूरत-शकल भी बहुत कुछ मिलती-जुलती थी। इसलिए कपड़े बदल लेने के बाद वह गड़रिया ठीक धर्मपाल सा मालूम होने लगा।

इस तरह धर्मपाल के भेस में गड़रिया दरबार में पहुँचा। अक्रम ने मुसकुराते हुए अपने सवालों का जवाब माँगा। गड़रिया जरा खाँस कर कहने लगा—'हुजूर! अपने

पहले सवाल का जवाब सुनिए! मेरी राय में आपकी कीमत निन्नानबे टके है। पूछिए कैसे? सुनिए, नक्षत्रक ने राजा हरिश्चन्द्र को सौ रुपए में बेचा था। सत्यवादी हरिश्चन्द्र से आपकी कीमत एक रुपया घट कर है!'

गड़रिए की बात सुन कर राजा अक्रम फूला न समाया। खासकर राजा हरिश्चन्द्र से अपनी तुलना होते देख कर उसे बहुत खुशी हुई। फिर उसने अपने दूसरे सवाल का जवाब माँगा।

'अगर हुजूर तड़के ही उठ कर सूरज के साथ चल पड़ें तो दूसरे दिन सुबह होते-होते याने चौबीस घण्टे में संसार की प्रदक्षिणा पूरी हो जाएगी।' गड़रिए ने राजा के दूसरे सवाल का जवाब दिया।

यह सुन कर दरबार में जितने लोग थे सब 'वाह-वाह!' कहने लगे।

'अच्छा; मेरे तीसरे सवाल का जवाब दो?' राजा अक्रम ने पूछा।

'वह भी सुन लीजिए हुजूर! आपके तीसरे सवाल का जवाब तो बहुत आसान है। आप अपने मन में सोच रहे हैं कि मैं धर्मपाल हूँ। लेकिन नहीं; आपका सोचना गलत है। मैं धर्मपाल नहीं, एक गड़रिया हूँ।' यह कह कर गड़रिए ने धर्मपाल के दुशाले और दुपट्टे उतार कर फेंक दिए और अपने निज-रूप में प्रगट हो गया।

यह देख कर दरबार में जितने लोग थे सब सन्न रह गए। अक्रम सिंह के मुँह पर काटो तो खून नहीं। लेकिन सब लोग मन ही मन खुश होने लगे कि गड़रिए ने राजा को अच्छा पाठ पढ़ाया।

आखिर राजा को खून की घूँट पीकर चुप रह जाना पड़ा और मन में इच्छा न होने पर भी धर्मपाल और उसके भेजे हुए गड़रिए को अच्छा पुरस्कार देना पड़ा। नहीं तो सब लोग उसकी निंदा करते।
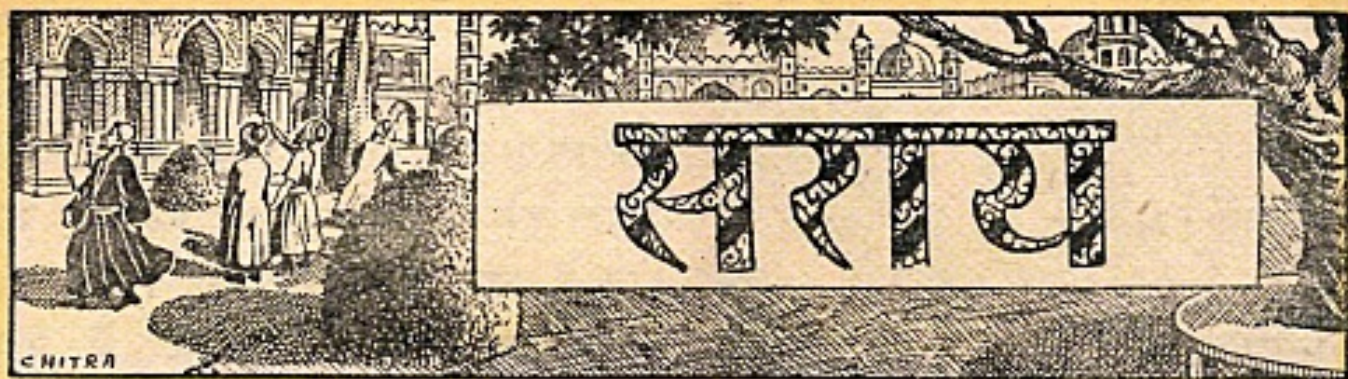
फ़ारस पर किसी समय फ़ज़ल महमूद नाम का बादशाह हुकूमत करता था। उसने लाखों दीनार खर्च करके अपने रहने के लिए एक आलीशान महल बनवाया था। देश-देश के कारीगरों को बुला कर उसने उन्हें खूब लालच दिया और उस महल के बनाने में अपनी सारी कारीगरी दिखाने को कहा।

संसार में जहाँ कहीं सङ्गमर्मर, हीरे-जवाहर, मोती-मूँगे, लाल-मरकत, नीलम-पुखराज वगैरह कीमती पत्थर थे वहाँ-वहाँ अपने ताबेदारों को भेज कर उसने मुँह-माँगे दाम पर उनको खरीद मँगवाया और अपने महल की दीवारों और फ़र्श पर जड़ने का हुक्म दिया।

जितना रुपया खर्च होता है उतनी ही शान-शौकत पैदा होती है। अब उस बादशाह का महल इतना शानदार बना कि उसे देखने के लिए दूर-दूर के देशों से लोग आने लगे और उसे देख कर बादशाह की बड़ाई करने लगे। उनकी वाह-वाही सुन कर बादशाह फूल कर कुप्पा हो जाता और उस महल को और भी सजा-धजा कर चार चाँद लगाने के लिए रुपया पानी की तरह बहाता।

बाप-दादों ने कौड़ी-कौड़ी दाँतों से पकड़ कर करोड़ों जमा किया था और खज़ाना भर रखा था। वह सारा रुपया बादशाह ने अपना महल बनाने में खर्च कर डाला। नहीं तो वैसा महल वह कहाँ से बनाता?

उस महल में रह कर बादशाह ने बीस साल तक राज किया और अन्त में सब कुछ छोड़ कर खाली हाथ चल बसा। आखिरी घड़ी में उसने शाहज़ादे सिराज को बुला कर कहा—'बेटा! तुम जानते हो कि मैंने कितना रुपया खर्च करके यह महल बनाया

अहमद हुसेन

है और यह मुझे कितना प्यारा है! मैंने कभी इसकी रौनक फीकी नहीं पड़ने दी। मेरी आखिरी ख्वाहिश है कि तुम भी इस महल को जान की तरह प्यारा समझो और इसकी चमक-दमक किसी तरह कम न होने दो।'

तख्त पर बैठते ही सिराज ने सोचा कि बाप की ख्वाहिश पूरी करनी चाहिए। इसलिए उसने बहुत सा रुपया लुटा कर, उस महल के चारों ओर एक खूबसूरत बगीचा लगवाया। बेल-बूटे, पेड़-पौधे वगैरह लगवाए और जगह-जगह तालाब खुदवा कर फव्वारे लगवाए। इस तरह महल की रौनक और भी बढ़ गई।

बाप के ज़माने में ही खज़ाना खाली हो गया था। इसलिए सिराज को जब पैसे की ज़रूरत हुई तो उसने नए-नए कर लगा कर रैयत से वसूल करना शुरू किया। यहाँ तक कि इन करों का बोझ ढोना लोगों के लिए दुश्वार हो गया और वे आपस में बड़बड़ाने लगे कि नया बादशाह अपने ऐशो-आराम के लिए हम लोगों का खून चूस रहा है। लेकिन बादशाह के खिलाफ़ कुछ करने की हिम्मत किसमें थी?

उस महल की चहर-दीवारी के अन्दर रह कर, लोगों की शिकायतों पर कान न देते हुए, उनके पसीने की कमाई फ़िज़ूल के धन्धे में खर्च करके सिराज ने पचीस बरस तक राज किया और मरते वक्त अपने लड़के अब्दुल्ला को बुला कर कहा—'बेटा! राज-महल और बाग-बगीचों की जिनकी वजह से हमारी शोहरत सारी दुनियाँ में फैल रही है, अच्छी तरह देख-भाल करना! तुम्हारे दादा ने और मैंने अब तक जो कुछ किया उस पर दाग न लाना! इसके अलावा मैं और क्या कहूँ!' यह कह कर उसने दम तोड़ दिया।

तख्त पर बैठने के बाद अब्दुल्ला ने सोचा कि बाप-दादों से भी ज्यादा नाम कमाना चाहिए। इसलिए उसने जगह-जगह उस महल की मरम्मत कराई और नए-नए हिस्से जोड़ना शुरू किया। इसके लिए उसने गैर-मुल्कों से कारीगरों को बुलाया और पुराने ढङ्ग की इमारतों को ढह कर नए ढङ्ग से बनाने का हुक्म दिया।

'इसमें क्या लगा है? पलक मारते में हम सब कुछ कर लेंगे! आप हमें बस, बीस लाख दीनार दिला दीजिए।' उन कारीगरों ने कहा।

तब अब्दुल्ला ने वज़ीर को बुला कर कहा—'भई! हमें बीस लाख दीनार इसी दम चाहिए। कोई न कोई तदबीर निकालो! न हो तो कोई नया कर लगा दो।'

'खुदावन्द! सीधी-सादी दुधारू गाय भी ज्यादा दिक करने पर लात मारने लगती है। फिर इन्सान का कहना ही क्या? बेचारी रैयत हर रोज़ नए-नए कर कहाँ से देती रहेगी?' वज़ीर ने जवाब दिया।

यह सुन कर बादशाह की त्योरियाँ चढ़ गईं और उसने मन्त्री की ओर घूर कर देखा। बस, मन्त्री भीगी बिल्ली बन कर चला गया। उसने तुरन्त राज में ऐलान करा दिया कि आज से ज़बान पर कर लगाया गया है। उस ऐलान में कहा गया था—'बादशाह अपने महल और बगीचे के कई हिस्सों को नए सिरे से बनवाना चाहते हैं। इसलिए बीस लाख दीनार की ज़रूरत पड़ गई है। आज से इस सल्तनत में रहने वाले हर आदमी को, जिस के मुँह में ज़बान हो, चाहे वह बच्चा हो, बूढ़ा हो या औरत हो, सौ दीनार देना होगा। यह कर जो नहीं देगा, उसकी जीभ काट ली जाएगी।'
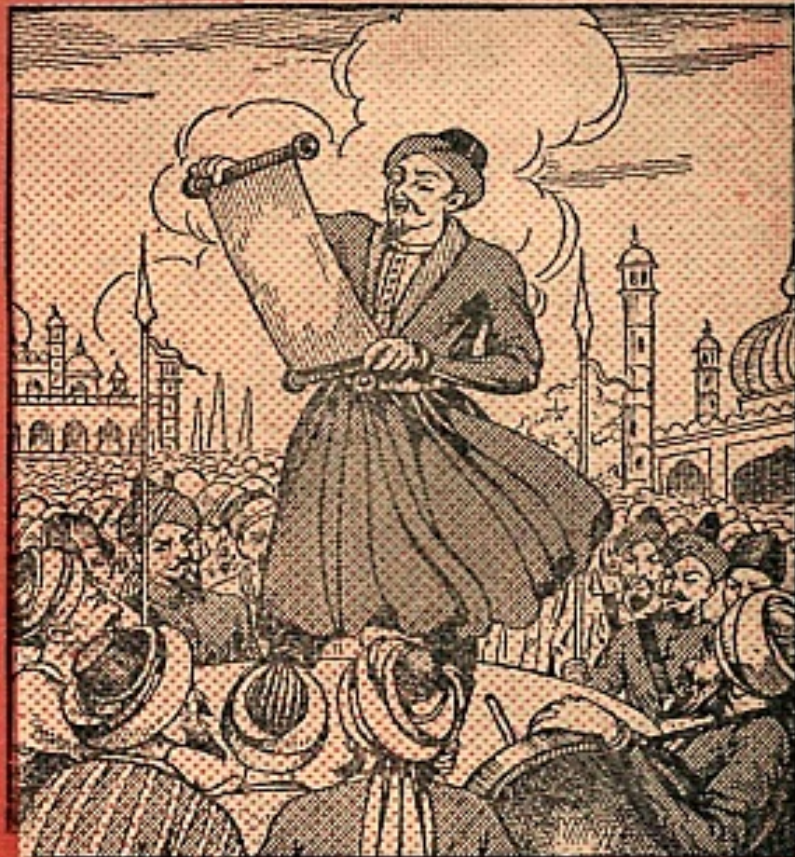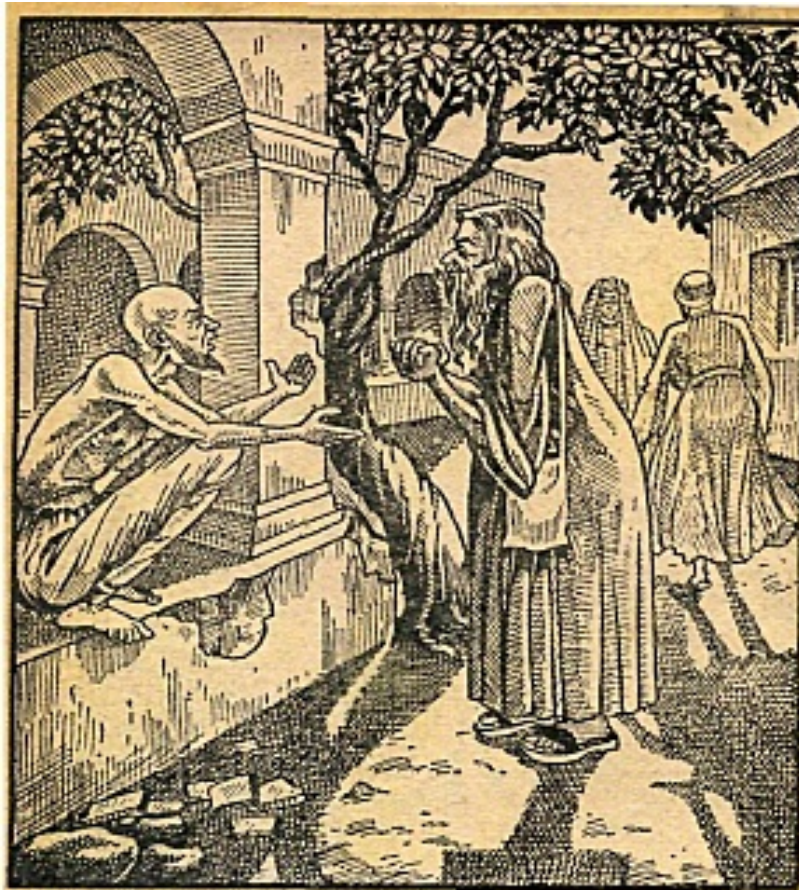
यह घोषणा सुनते ही सब लोग बादशाह को कोसने और गालियाँ देने लग गए। लेकिन कर न देने पर जान जाने का डर था। इसलिए हर कोई जायदाद बेच-बाच कर भी कर देने का इन्तज़ाम करने लगा।

उन्हीं दिनों उस शहर में एक नया फ़कीर आया। वह हर देहली पर जाकर 'अल्लाहो अकबर' कहने और भीख माँगने लगा। लेकिन किसी ने उसे भीख नहीं दी।

उस फकीर को बड़ा अचरज हुआ कि उसे कहीं भीख क्यों नहीं मिलती? लोग एकाएक इतने बेरहम क्यों बन गए?

उसने एक आदमी से इसका कारण पूछा। उसने कहा—'इस मुल्क में तुम्हें कहीं भीख नहीं मिलेगी। यहाँ हरेक को ज़बान का कर चुकाने की फिक्र लगी है!'

धीरे-धीरे फकीर को सारा किस्सा मालूम हो गया। उसने सोचा—'यह कैसा बादशाह है जो महल बनाने के लिए रैयत को इस तरह चौपट कर रहा है। इसे एक अच्छा पाठ पढ़ाना चाहिए!' यह सोच कर वह तुरन्त चल पड़ा और जाकर बादशाह के महल में घुस गया। उसने किसी से कुछ पूछा-ताछा नहीं। बस, निधड़क सीधे चलता गया। पहरेदारों ने सोचा कि वह बादशाह के बुलाने पर ही अन्दर जा रहा है। इसलिए किसी ने उसे रोका नहीं। फकीर ऐसी लापरवाही से चला जा रहा था, जैसे वह उसी का महल हो! उसने अन्दर जाकर एक नौकर से पूछा—'अबे! गुसल-खाना कहाँ है?' नौकर ने झट बता दिया। फकीर ने निश्चिन्त होकर नहा-धो लिया। फिर उसने नौकर से पूछ कर रसोई-घर का पता लगा लिया।

सीधे वहाँ जाकर दस्तरख्वान पर बैठ गया। बावर्ची उसे देखते ही खाना ले

आया। उसने रङ्ग-ढङ्ग देख कर समझ लिया कि ये कोई बड़े भारी फकीर हैं जिनकी बादशाह बहुत कद्र करते हैं। नहीं तो इस तरह अन्दर कैसे चले आते? उसने डर से काँपते हुए सब तरह की चीज़ें ला दीं। फकीर ने आराम से डट कर खा लिया और डकार तक न ली।

फिर फकीर ने पूछ-ताछ करके जान लिया कि बादशाह के आराम करने का कमरा कहाँ है। वहाँ जाकर वह बादशाह की मुलायम गद्देदार पलङ्ग पर पैर पसार कर लेट गया और खुर्राटे लेने लगा।

जब थोड़ी देर बाद फकीर का अजब किस्सा बादशाह ने सुना तो उसे बहुत अचरज हुआ। उसने सोचा—'कौन है यह गुस्ताख फकीर जो बिना इजाज़त मेरे महल में घुस आया है? मैं तो किसी फकीर का नाम भी नहीं जानता।' आखिर उसने अन्दर जाकर देखा।

फकीर आराम से सो रहा था। बादशाह यह देख कर पशोपेश में पड़ गया। उसे जगा न सका। इसलिए वह वहीं बैठ कर उसके जगने की राह देखने लगा। थोड़ी देर बाद फकीर के जगते ही बादशाह ने पूछा—'फकीर जी! आप जैसों के लिए इस शहर में बहुत सी सराएँ बनी हुई हैं। आप मेरे महल में ही क्यों चले आए?'
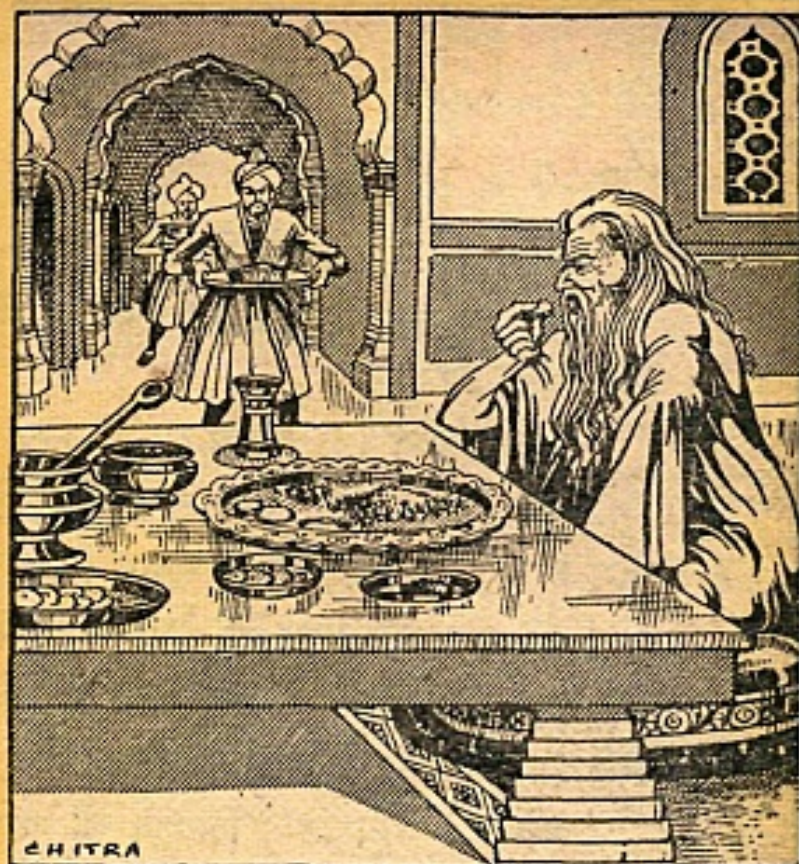
'मैंने इस महल को भी एक सराय समझ लिया था।' फकीर ने भोली सूरत बना कर कहा।

'यह सराय नहीं जनाब! यह मेरे बाप-दादे का बनाया हुआ महल है। फिलहाल इसमें मैं रहता हूँ।' बादशाह ने कहा।

'अच्छा! यह तो बताइए, आपके दादा इसमें कितने दिन रहे?' फकीर ने सीधा सा सवाल किया।

'बीस बरस!' बादशाह ने जवाब दिया।

'और आपके वालिद?' फकीर ने फिर सवाल किया।'

'पचास बरस!' बादशाह ने कहा।

'और आप कितने साल से इसमें रहते आए हैं?' फकीर ने फिर सवाल किया।

'मेरी उम्र तीस बरस की है। मैं जब से पैदा हुआ तब से इसी में रहता आया हूँ और मरते दम तक यहीं रहूँगा।' बादशाहने कहा।

'अच्छा! मान लिया कि तुम सौ बरस जिओगे। इसके माने हुआ कि तुम इस महल में सत्तर साल और रहोगे। इससे ज्यादा तो नहीं?' फकीर ने कहा और बादशाह की तरफ देखा।

बादशाह की समझ में न आया कि फकीर ये सब सवाल क्यों कर रहा है? उसने बिना जाने-बूझे कह दिया—'ठीक!'

तब फकीर ने पलङ्ग से नीचे उतर कर कहा—'तब तो हुजूर! मैंने जो कहा वह ठीक निकला न? आपका महल एक सराय नहीं तो और क्या है? आपके बाप-दादे इसमें कुछ दिन रह कर चले गए। उसी तरह आप भी कुछ दिन रह कर चले जाएँगे। हमेशा इसमें नहीं रहेंगे। फिर इस महल की सजावट के लिए लोगों का खून क्यों चूसते हैं? उन्हें क्यों सताते हैं? अब भी सम्हल जाइए! आगे से रैयत का पैसा रैयत की भलाई के लिए ही खर्च कीजिए!' यों नसीहत देकर फकीर ने कहा कि 'अब मैं इस सराय में नहीं रहूँगा' और वहाँ से चला गया।

तब बादशाह अब्दुला की आँखें खुल गईं और उसने तुरन्त ज़बान का कर रद्द करने का हुक्म दे दिया। इतना ही नहीं, उस दिन से वह रैयत का पैसा रैयत की भलाई के कामों में ही खर्च करने लगा। फकीर की यह बात वह कभी नहीं भूला कि उसका राज-महल भी एक सराय है।

भुवालपूर में सोमनाथ नाम के एक बूढ़े दादा रहते थे। उनकी पत्नी का नाम तुलसी था। उनके एक नाती था जिसका नाम बालनाथ था।

दादा सोमनाथ को सुँघनी की लत थी। सुँघनी के बिना एक पल भी न रहा जाता। रोज़ एक आने की सुँघनी नाक में ठूँसते थे। सुँघनी लाने का काम बालनाथ करता था जिसके लिए उसे एक पैसा मिलता था।

सोमनाथजी को सुँघनी सूँघने, जब जब फ़ुरसत मिली तब तब एक झपकी लेने और वक्त-बेवक्त नाती को किस्से-कहानियाँ सुनाने के सिवा और कोई काम-धन्धा न था। घर का सारा काम-धाम पतोहू कर लेती थी। इसलिए उसके काम में गलतियाँ ढूँढ़ने और हमेशा बक-झक करने के सिवा तुलसी दादी को भी कोई काम न था।

इस तरह दिन बीतते जा रहे थे कि उस गाँव के महादेवजी के मन्दिर में शाम के पाँच बजे कोई पण्डितजी कथा बाँचने लगे। यह खबर दादा सोमनाथ की बहू को मालूम हो गई। उसने अपनी सास से कहा—'सासजी! आप रोज जाकर कथा सुन आइए। रसोई का सारा काम मैं कर लूँगी।' सास से यों कहने में सिर्फ उसकी उदारता ही नहीं थी। उसकी मन्शा थी कि कम-से-कम तीन-चार घण्टे के लिए नुक्ता-चीनी से उसकी जान तो बच जाए। तुलसी दादी ने भी सोचा कि कथा सुनने से बहुत पुण्य होता है। इसलिए वह रोज़ जाकर कथा सुनने लगी।

पण्डितजी कथा बहुत अच्छी तरह कहते थे। इसलिए तुलसी दादी रोज़ घर आकर बहू से उनकी तारीफ करके कहने लगी कि 'उस पण्डित की कोई बराबरी नहीं कर
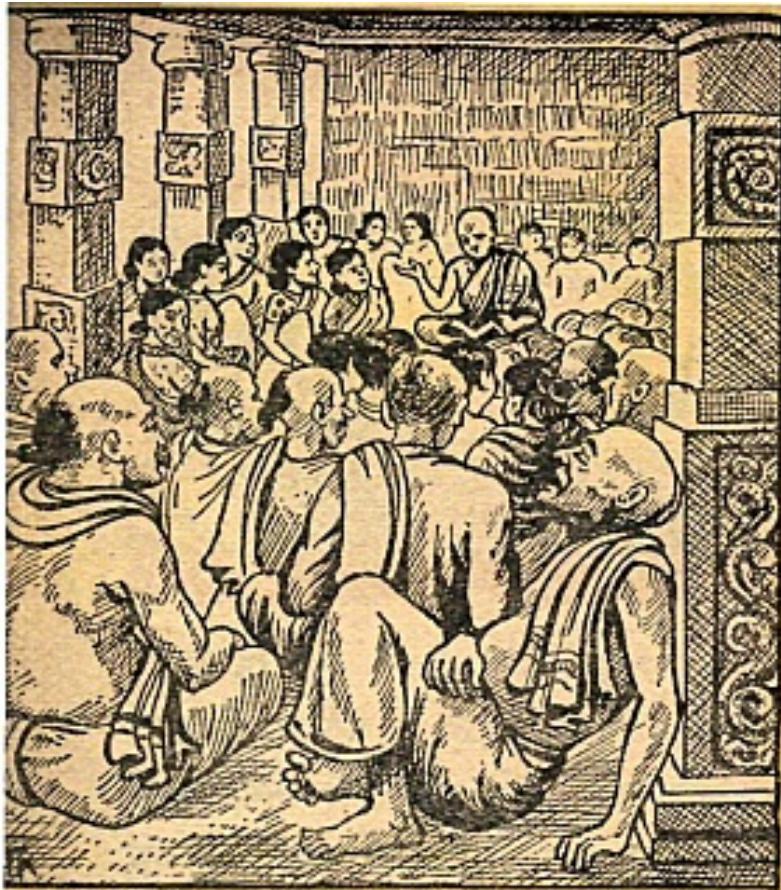
सकता।' कुछ दिन बाद तुलसी दादी ने सोचा कि कथा सुनने का आनन्द सोमनाथ दादा को भी मिलना चाहिए। इसलिए वह रोज उनको ट्रिक करने लगी कि 'आप भी कथा सुनने आइए।'

आखिर सोमनाथजी को उसकी बात माननी ही पड़ी। नहीं तो जान नहीं बचती।

आखिर वे भी अपने नाती को साथ लेकर कथा सुनने चले। तुलसी दादी जाकर औरतों में बैठ कर कथा सुनने लगी और सोमनाथजी पोते के साथ जाकर मर्दों में बैठे।

उस दिन पण्डितजी ने कुछ अच्छे चुटकुले सुनाए। सब लोग हँसने लगे। तुलसी दादी ने सोमनाथजी की तरफ नज़र दौड़ाई; यह देखने के लिए कि वे हँस रहे हैं या नहीं। बेचारी दादी ने क्या देखा, जानते हो?

सोमनाथ दादा एक खम्भे से पीठ टेके मजे में खुर्राटे ले रहे थे।

दादी को बहुत गुस्सा आया। शाम को घर लौटते वक्त उसने कहा—'कथा सुनते समय नाक बजाने से काम कैसे चलेगा? लोग क्या समझेंगे?' बस, वह घर तक बड़बड़ाती गई। दादा ने कहा—'पण्डितजी की आवाज कितनी सुरीली थी? इसी से मुझे नींद आ गई। नहीं तो मैं क्यों सोता? देख लेना? फिर कतई नहीं सोऊँगा!' उन्होंने दादी को समझाया।

लेकिन दूसरे दिन भी वे उसी तरह सो गए और दादी ने देख भी लिया।

अब उसने सोचा कि इनसे कहने-सुनने से कुछ फायदा न होगा। रात भर जाग कर वह दिमाग लड़ाती रही कि कौन सा ऐसा उपाय किया जाय जिससे इन्हें कथा सुनते वक्त सोने का मौका न मिले? आखिर भोर होते-होते उसे एक तदबीर सूझ गई। दूसरे दिन उसने बालनाथ को बुला कर

कहा—'बेटा ! मेरा एक काम करोगे ?'

'ज़रूर करूँगा दादी !' नाती ने कहा।

'तो आज से कथा के समय तुम्हारे दादा जब जब झपकी लेंगे तब तब तुम्हें उनको जगाना होगा !' दादी ने कहा।

'अच्छा दादी ! लेकिन इसके बदले मुझे क्या दोगी ?' नाती ने कहा।

'हर रोज़ तुम्हें एक पैसा दूँगी।' दादी ने वचन दिया।

उस दिन भी दादा सोमनाथ कथा सुनते वक्त सो जाने लगे। लेकिन नाती ने उन्हें जगा दिया। यह सब दादी देख ही रही थी। उसने मन ही मन नाती की प्रशंसा की और घर जाते ही उसे एक पैसा देकर अपना वचन पूरा किया।

दूसरे दिन भी जब दादा सोने लगे तो नाती ने उन्हें जगा दिया। उस दिन भी शाम को ईनाम के तौर पर उसने एक पैसा पाया। अब दादी खुश होने लगी कि उसकी चाल खूब चल गई।

लेकिन तीसरे दिन जब कथा सुनते वक्त उसने अपने पति की तरफ नज़र फेरी तो देखा कि वे मजे से सो रहे हैं। इतना ही नहीं, उसने यह भी देखा कि नाती उन्हें जगाने की बिलकुल कोशिश नहीं कर रहा है। वह दूसरी तरफ देख रहा है। यह देख कर दादी को बहुत गुस्सा आया। शाम को घर लौटते ही वह नाती को पिछवाड़े ले गई और गरज कर बोली—'क्यों रे, तू ने दादा को आज क्यों नहीं जगाया ?'

'दादी ! दादा को जगाने पर तुम एक ही पैसा देती हो ! लेकिन न जगाने पर दादा ने मुझे दो पैसे देने का वचन दिया है ! देखो, आज के मेरे दो पैसे !' यह कह कर वह मिठाई खरीदने दौड़ा।

दादी ने सोचा—'कितने चालाक हैं मेरे ये !'

वीरपूर के राजा श्रीमान वीरसिंह ने एक बार एक बड़ी भारी दावत देने का इन्तज़ाम किया। इसका कारण यह नहीं था कि वे किसी पड़ोसी जमींदार पर मुक़दमा जीते। बात सिर्फ यह थी कि उनका घोड़ा मीनू घुड़-दौड़ में जीत गया था। राजा साहब ने अपने सब मित्रों को दावत में बुलाया। उनके प्रति अपनी श्रद्धा दिखाने के लिए सब लोग समय पर आ गए।

दावत धूम-धाम से होने लगी। लोग तरह-तरह की चीज़ें खाकर, तरह-तरह के शरबत पीकर खिल-खिला कर हँसते हुए बातें करने लगे और एक दूसरे की हँसी-दिल्लगी उड़ाने लगे।

यों थोड़ी देर हुई कि अचानक कमरे के एक कोने में शोर-गुल शुरू हुआ। सब लोग उस तरफ देखने लगे। राजा साहब उत्सुक दृष्टि से उस तरफ घूरने लगे कि बात क्या है, कौन हल्ला मचा रहा है? 'नहीं, उसमें जोखिम है! जान का जोखिम है।' भगवतीचरण मेज़ पर मुक्का मार कर कह रहा था।

'मुझे तुम्हारे मन्तर-तन्तर और जादू-टोने में बिलकुल विश्वास नहीं।' उसकी बगल में बैठे हुए मोहन कुमार ने मुसकुरा कर जवाब दिया! अब धीरे-धीरे सब लोग उठ कर उन दोनों के चारों ओर जमा हो गए।

राजा साहब ने अपने दीवान की तरफ़ देखा। दीवान साहब बहुत दिन से उनकी नौकरी कर रहे थे। बस, पल में उनका मतलब ताड़ गए। वे उठ कर उस मेज़ की तरफ गए जिसके पास भगवतीचरण और मोहन कुमार वाद-विवाद कर रहे थे। लोगों ने हट कर दीवान साहब के लिए जगह छोड़ दी। 'बात क्या है?' दीवान साहब ने पूछा।

सुधाशरण

'जी! ये महाशय कहते हैं कि मन्तर-तन्तर सब झूठ है, ढोंग है!' यह कह कर भगवतीचरण ने मोहन कुमार की तरफ क्रोध से देखा।

'क्यों? यही बात है?' यह कह कर दीवान जी ने मोहन कुमार की तरफ देखा।

'मैं निरा काठ का उल्लू नहीं, जो ऐसी-ऐसी बातों में विश्वास करने लगूँ!' मोहन कुमार ने कहा।

'लेकिन, मन्त्र-बल का सबूत मिले तब तो विश्वास करना ही पड़ेगा।' दीवान ने कहा।

यह सुन कर भगवतीचरण चिन्ता में पड़ गया। आखिर आहिस्ते से बोला—'मालूम होता है, इन बातों में दीवान जी को भी विश्वास नहीं।'

'मेरे विश्वास से आपको क्या वास्ता? आप अपने मन्त्र-बल से अविश्वासी मोहन कुमार को बिल्ली या कुत्ता बना दीजिए न?' यह कह कर दीवान जी कनखियों से मोहन कुमार की ओर देखने लगे।

'मेरे मन्तर मामूली नहीं हैं! बड़े खतरनाक हैं। पीछे पछताने से कोई फायदा न होगा।' यों भगवतीचरण और भी कुछ कहने जा रहा था कि मोहन कुमार ने टोक कर कहा—'क्या तुम मुझे कुत्ता या बिल्ली बना सकते हो?'
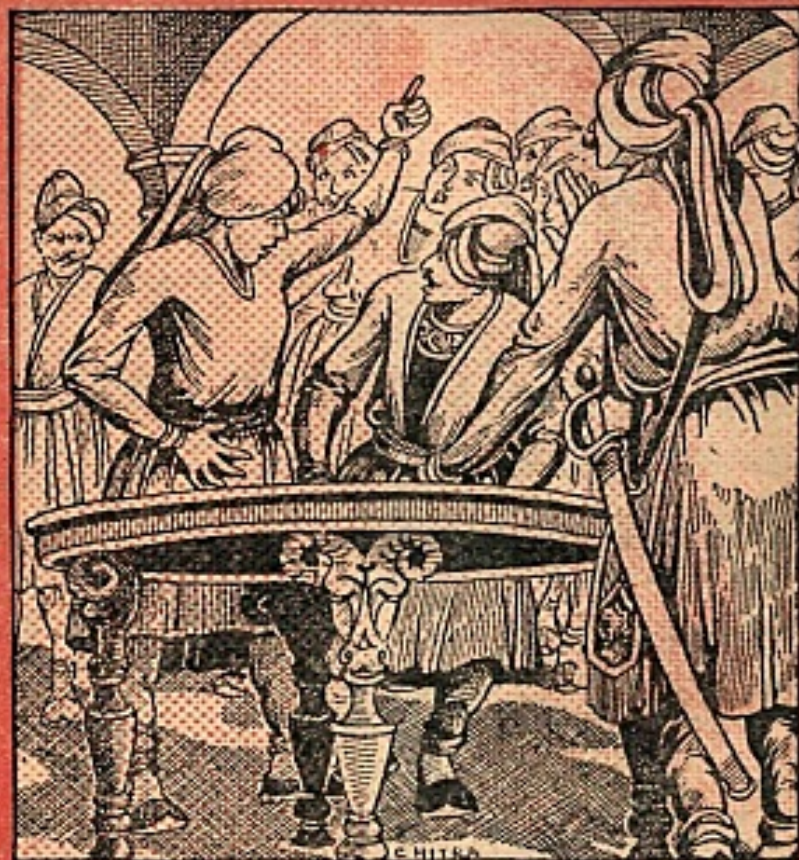
'बिल्ली-कुत्ता तो क्या, मैं चाहूँ तो तुम्हें भालू ही बना दूँ। लेकिन ठहरो! उचित समय आने दो!' भगवतीचरण ने दीवान जी की तरफ देखते हुए कहा।

यह सुन कर दीवान जी ने बहुत आश्चर्य प्रगट किया और कहा—'अभी अन्धेरा होने में आधे घण्टे की देर है। अन्धेरा होते ही भगवतीचरण जी अपने मन्त्र-बल से मोहन कुमार को भालू बना देंगे। इसलिए हमारी प्रार्थना है कि जो लोग दावत खाने आए हैं वे सब थोड़ी देर और ठहर जाएँ और यह

तमाशा भी देख लें।' इतना कह कर दीवान राजा साहब की बगल की कुर्सी में जाकर बैठ गए।

अब मेहमान लोग आपस में काना-फूसी करने लगे। भगवतीचरण के मन्त्र-बल के बारे में लोगों में तरह-तरह की धारणाएँ प्रचलित थीं। इसलिए वे तरह-तरह से वाद-विवाद करने लगे।

थोड़ी देर बाद दीवान जी ने मोहन कुमार को अपने पास बुला कर कान में कुछ कह दिया। फिर उन्होंने रियासत के वन-विभाग के अफसर को बुला कर उनसे भी कुछ बातें कीं।

इतने में अन्धेरा हो गया। मोहन कुमार भगवतीचरण के सामने बैठा हुआ कुछ सोच रहा था। भगवतीचरण सिर हिला कर, भौंह मरोड़-मरोड़ कर मन ही मन कुछ तर्क-वितर्क सा कर रहा था।

उधर राजा साहब मूँछों पर ताव देते, कुर्सी पर बैठे चारों ओर नज़र दौड़ा रहे थे। इतने में दीवान जी ने मोहन कुमार के पास आकर कहा—'आपने भगवतीचरण जी के मन्त्र-बल पर अपना अविश्वास प्रगट किया था। अब आइए! भगवतीचरण जी की चुनौती स्वीकार कीजिए और उनकी परीक्षा लीजिए! चलिए, उस कमरे में चलें।' यह कह कर उन्होंने मोहन कुमार को सामने के कमरे में ले जाकर बन्द कर दिया और ताला लगा दिया। भगवतीचरण यह सब देख कर बिलकुल सन्न रह गया।

दीवान जी ने उसका हाथ पकड़ कर कहा—'आओ! अब तुम मन्त्र-बल पर अविश्वास करने वालों का मुँह बन्द कर दो। उनको एक अच्छा पाठ पढ़ा दो! आकर मोहन कुमार को भालू बना दो!'

'म्-म्-म्-मैं! मैं!' कहते हुए भगवतीचरण तुतलाने लगा।

‘हाँ जी ! क्यों नहीं ? आओ न !’ कह कर दीवान जी राजा की बगल में जाकर बैठ गए।

भगवतीचरण अब लाचार होकर सिर झुका कर कुछ मन्तर बड़बड़ाने लगा। इतने में मोहन कुमार जिस कमरे में बन्द था उसमें से भालू के गुर्राने की आवाज़ आई। उसे सुन कर सब लोगों के साथ भगवतीचरण भी दहल गया।

‘वाह भई ! वाह !’ कहते हुए दीवान जी उठ खड़े हुए। तुरन्त उन्होंने नौकर को बुला कर उस कमरे का ताला खुलवाया।

आश्चर्य ! दरवाजा खोलते ही लोगों ने देखा कि एक बड़ा भारी भालू गुर्रा कर बाहर आ रहा है।

‘मैं समझता हूँ कि भगवतीचरण के मन्त्र-बल के बारे में अब किसी को कोई शक नहीं रह गया होगा। अविश्वासी मोहन कुमार को फिर मनुष्य का रूप देते ही यह साबित हो जाएगा कि भगवतीचरण में ज़रूर कोई न कोई अलौकिक शक्ति है। शाबास ! भगवतीचरण जी ! अब मोहन कुमार को फिर से आदमी बना दो !’ दीवान जी ने उसकी तरफ देख कर कहा।

बेचारे भगवती चरण ने डर से काँप कर जवाब दिया—‘जी ! उसे भालू तो मैंने नहीं बनाया।’

तुरन्त राजा साहब-गुस्से में अपनी कुर्सी से उठ कर खड़े हो गए। उन्होंने कहा—‘मैं अपने महल में ऐसी दुर्घटना न होने दूँगा। सब लोग जानते हैं कि आदमियों को भालू बना कर रखना बहुत बुरी बात है। आदमी से जो भालू बन जाता है उस में आदमी की सूझ भी होती है और भालू की ताकत भी। इसलिए हम उसका बाल भी बाँका नहीं कर सकते। जब तक भगवतीचरण इस भालू को फिर से आदमी

न बना देगा, तब तक उसे इस महल से बाहर कदम न रखने दिया जाएगा।' यह कह कर राजा साहब फिर अपनी कुर्सी पर बैठ गए।

धीरे-धीरे पाँच मिनट बीत गए। राजा साहब मूँछें ऐंठते हुए चुपचाप बैठे रहे। आखिर दीवान जी उठे और जाकर भगवतीचरण का हाथ पकड़ लिया!

'जब तुम में भालू को आदमी बनाने की ताकत नहीं थी तो तुमने मोहन कुमार को भालू क्यों बना दिया?' उन्होंने गरज कर पूछा।

भगवतीचरण के सारे बदन से पसीना छूटने लगा। उसने दीन-स्वर में कहा—'जी! मैंने उसे भालू कहाँ बनाया था? मुझमें ऐसी शक्ति ही कहाँ है? मैंने तो यों ही डींग हाँक दी थी! कहीं ऐसी बातों से कुछ होता-जाता है?' तब दीवान जी ने दावत में आए हुए मेहमानों की तरफ देख कर कहा—'सुन लिया भगवतीचरण का कहना!'

'सुन लिया! सुन लिया!' सब लोग एक साथ चिल्लाए।

फिर दीवान जी ने नौकरों को बुला कर उस भालू को कमरे में बन्द करवा दिया। वह अन्दर गुर्राने लगा। लेकिन किसी ने उसकी तरफ ध्यान न दिया।

पाँच मिनट तक चुपचाप खड़े रहने के बाद दीवान जी ने खुद जाकर उसी कमरे का दरवाजा खोला। तुरन्त मोहन कुमार उस कमरे में से मुसकुराता हुआ बाहर निकल आया। यह देख कर सब लोग 'वाह! वाह!' कहने लगे। बस, भगवतीचरण दुम दबा कर ऐसा भागा कि फिर कहीं पता तक न लगा। अब सब लोग कहने लगे कि दीवान जी बड़े भारी जादूगर हैं! लेकिन जिन लोगों को सारा भेद मालूम था उन्होंने याने राजा साहब, मोहन कुमार और वन-विभाग के अफसर आदि ने उनकी चतुराई को खूब सराहा।

किसी समय भीमनगर पर मतिमन्द नाम का एक राजा राज करता था। वह बड़ा क्रोधी और गर्वीला था। उचित और अनुचित का ख्याल न करके वह प्रजा पर हर रोज नए नए फरमान जारी करता रहता था। कभी उनकी तकलीफों का विचार न करता था।

एक दिन राजा मतिमन्द अपने महल की छत पर टहल रहा था कि उसे नीचे सड़क पर चलते हुए तरह-तरह के बेशुमार लोग अपनी रङ्ग-बिरङ्गी पोशाकों में दिखाई दिए। तुरन्त उसे एक बात सूझ गई। उसने मन्त्री को बुलाया। 'मन्त्रीजी!' राजाने कहा। 'जी हुजूर!' मन्त्री ने कहा। 'अपने शहर की सड़क पर देखो! लोग किस तरह मनमाने ढङ्ग से चल रहे हैं? यह बहुत भद्दी बात है! जाओ, राज में ऐलान करवा दो कि आज से सब लोगों को एक सी पोशाक पहननी होगी। सबका रहन-सहन, चाल-चलन, खान-पान एक ढङ्ग का होगा और सब लोग एक ही देवता की पूजा करेंगे। यह हमारा हुक्म है।' राजा ने फरमाया।

मन्त्री ने हाथ जोड़ कर अरज़ किया कि रहन-सहन, खान-पान और पोशाक से लेकर देवता की पूजा तक, सब बातों में लोगों को एक साँचे में ढालना असम्भव है। लेकिन राजा क्यों सुनने लगा! उसने कहा कि राजाज्ञा लौटाई नहीं जा सकती।

दो-तीन दिन बीत गए। राजा मतिमन्द ने सोचा—'चल कर ज़रा देखें तो सही, हमारी आज्ञा का लोगों पर क्या असर हुआ है? लोग हमारे हुक्म की तामील कर रहे हैं या नहीं।' उसके मन में यह दृढ विश्वास हो गया था कि जब उसके

कुमारी वीरा

राज के सब लोग आहार-विहार, वेष-भूषा और रीति-रिवाज में एक समान बन जाएँगे तो उसके राज को संसार में एक विशिष्ट स्थान मिलेगा और उसका यश चिर-स्थायी बन जाएगा।

दूसरे दिन सबेरे मतिमन्द उठा और अपने उद्यान में जा पहुँचा। वहाँ जो दृश्य दिखाई दिया उसके कारण राजा बहुत सोच में पड़ गया। बात यह हुई कि नौकर-नौकरानियाँ सभी एक सी पोशाक पहने हुए थे। अब राजा के लिए यह जानना मुश्किल हो गया कि इन में कौन स्त्री है और कौन पुरुष! उद्यान से उदास होकर वह अन्तःपुर में पहुँचा। वहाँ भी वही दृश्य उसके सामने आया। यह पहचानना भी उसके लिए कठिन हो गया था कि कौन रानी है और कौन दासी! सब की पोशाक एक सी थी और सब एक से गहने पहने हुई थीं।

अब मतिमन्द की अक्ल चकराई। उसे मन्त्री पर बहुत गुस्सा आया। वह वहाँ से सीधे दरबार में पहुँचा। वहाँ भी वही हालत थी। मन्त्री, सेनापति और सिपाही सभी एक से कपड़े पहने हुए थे और एक से दिखाई देते थे।

'मन्त्री!' राजा चिल्लाया। 'मन्त्री!' मन्त्री ने चिल्ला कर जवाब दिया। 'क्या मैं मन्त्री हूँ? तेरी शामत आई है?' राजा ने आग-बबूला होकर कहा। लेकिन मन्त्री ने ठीक उन्हीं शब्दों में, उसी स्वर में तोते की तरह दुहरा दिया।

अब मतिमन्द अपनी बेवकूफी पर बहुत शरमाया और चुपचाप उठ कर महल में चला गया। दूसरे दिन ऐलान हुआ कि पिछली राजाज्ञा लौटाई जाती है। अब से लोग जैसे चाहें रहें, चाहे जिस देवता की पूजा करें; राजा की ओर से कोई रोक-टोक नहीं होगी।

सङ्केत

बाएँ से दाएँ :

1. बायाँ
3. फायदा
4. भरा हुआ
6. धूल
8. मौत
11. महादेव
12. जलन
13. एक फल
15. एक त्यौहार
16. निचोड़
18. बोझ
19. दूल्हा
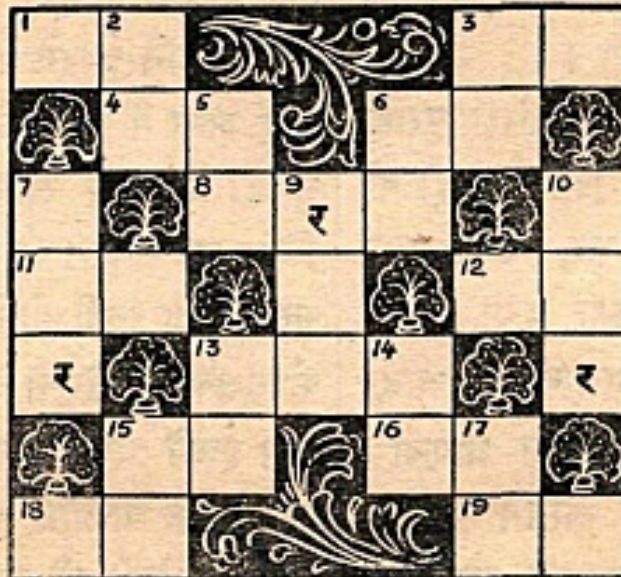
ऊपर से नीचे :

2. मेरा
3. शरम
5. मृत्युदेव
6. युद्ध
7. सिंह
9. जीभ
10. मायका
13. ब्रह्मा
14. पृथ्वी
15. किनारा
17. शब्द

सुराही का तमाशा

यह खेल करने के लिए दो ही चीज़ों की ज़रूरत है। एक छोटी सी सुराही और एक पतली सी रस्सी। सुराही सात-आठ इञ्च ऊँची हो और रस्सी की लम्बाई दो फुट हो। बस, काम चल जाएगा।

बाजीगर इस रस्सी का एक सिरा सुराही के अन्दर घुसा देगा। फिर सुराही को तीन-चार बार घुमा-फिरा कर, उलट-पुलट कर उस पर अपना जादू चला देगा। तब रस्सी का वह सिरा जो आसानी से अन्दर चला गया था, सुराही में जकड़ा जाएगा। दूसरे सिरे को पकड़ कर खींचने पर भी, सुराही को हिलाने-डुलाने पर भी रस्सी छूट कर नहीं आएगी। सुराही रस्सी के एक ही सिरे से लटकने लगेगी।

यह रस्सी बाजीगर अपने साथ ले आ सकता है या दर्शकों ही से माँग ले सकता है। रूमाल से भी यह खेल किया जा सकता है। रस्सी को पकड़ कर थोड़ी देर तक सुराही को इधर-उधर हिलाने-डुलाने के बाद अन्त में रस्सी को सुराही के बाहर खींच लिया जा सकता है। सुराही और रस्सी दोनों को दर्शकों के देखने के लिए दिया जा सकता है। इसमें एक रहस्य छिपा हुआ है। वह यह है कि बाजीगर पहले ही से इस सुराही में एक छोटी सी रबर की गेंद डाल रखता है। रबर की गेंद इतनी बड़ी होती है कि उसे रस्सी के साथ रखने पर दोनों सुराही के मुँह में नहीं समातीं। याने दोनों को
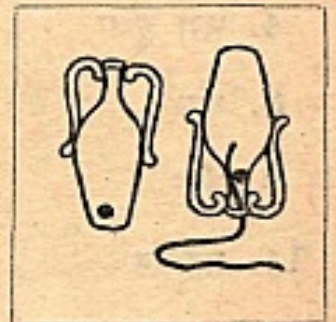
अन्दर डालने पर एक साथ बाहर नहीं निकाला जा सकता। इसीलिए उस गेंद को सुराही के अन्दर घुसा देने के बाद रस्सी का सिरा भी अन्दर डाल कर, सुराही को उलट देने से अन्दर की गेंद सुराही के मुँह में आकर फँस जाती है। रस्सी जो अन्दर होती है, अपने आप सुराही के मुँह में जकड़ी जाती है।

रस्सी को ज़रा सा खींचने से मालूम हो जाएगा कि वह अन्दर जकड़ी गई है कि नहीं। खींचने में मुश्किल पड़ने से जान लेना चाहिए कि गेंद आकर सुराही के मुँह में फँस गई है। बगल के चित्र को देखने से
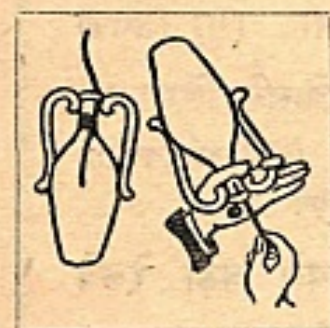
यह बात साफ मालूम हो जाती है। इस चित्र में दिखाया गया है कि रबर की गेंद सुराही के अन्दर किस तरह होती है। दूसरा चित्र देखने से मालूम हो जाता है कि सुराही को उलट देने पर गेंद कैसे आकर सुराही के मुँह में फँस जाती है और रस्सी कैसे उस गेंद और सुराही के मुँह के बीच जकड़ी जाती है। तीसरे चित्र में दिखाया गया है कि रस्सी को पकड़ कर सुराही को कैसे हिलाना-डुलाना चाहिए। याने रबर की गेंद के कारण रस्सी जकड़ी जाती है और सुराही को बहुत हिलाने-डुलाने पर भी छूट कर बाहर नहीं आती। चौथे चित्र में दिखाया गया है कि उस रस्सी को फिर बाहर खींच लेने पर गेंद भी किस तरह बाजीगर के हाथ में आ जाती है। बस, इतना करते ही खेल खतम हो जाता है। अब बाजीगर सुराही और रस्सी दोनों को दर्शकों को जाँचने के लिए दे सकता है। यह खेल करने में बहुत आसान है। लेकिन देखने में बहुत अजीब सा लगता है। इसे देख कर दर्शक लोग दङ्ग रह जाते हैं।

जो इस सम्बन्ध में प्रोफेसर साहब से पत्र-व्यवहार करना चाहें वे उनको 'चन्दामामा' का उल्लेख करते हुए अंग्रेज़ी में लिखें।

प्रोफेसर पी. सी. सरकार, मेजीशियन
12/3 ए, जमीर लेन, बालीगञ्ज,
कलकत्ता - 19.

मैं कौन हूँ?

*

मैं चार अक्षर वाला एक शब्द हूँ
जिसका अर्थ होता है 'आना'।

मेरा पहला अक्षर काट दोगे
तो अर्थ होगा — जाना।

मेरे पहले दोनों अक्षर काट
दोगे तो अर्थ होगा — चित्त।

मेरे आखिरी दोनों अक्षर काट
दोगे तो अर्थ होगा — अग्नि।

मेरे बीच के दोनों अक्षर काट
दोगे तो अर्थ होगा — मर्यादा।

मेरा पहले और चौथे अक्षर काट
दोगे तो अर्थ होगा — दुख।

मेरा चौथा अक्षर मात्र काट
दोगे तो अर्थ होगा — वेद।

क्या तुम बता सकते
हो कि मैं कौन हूँ?

अगर न बता सको तो जवाब
के लिए ५२-वाँ पृष्ठ देखो।

बताओ तो?

*

१. दुनियाँ की सबसे बड़ी नदी कौन सी है?
(क) एमेजान (ख) मिसीसिपी (ग) नील

२. किस मुसल्मान ने भारत पर पहले धावा किया?
(क) बिन कासिम (ख) महमूद गजनी (ग) गोरी

३. सबसे ऊँचा जानवर कौन सा है?
(क) ऊँट (ख) हाथी (ग) जिराफ़ी

४. पृथ्वीराज रासो किसने लिखा?
(क) जायसी (ख) चन्दबरदाई (ग) भूषण

५. भारत का सबसे बड़ा रेलवे पुल कौन सा है?
(क) सोन पुल (ख) हावड़ा पुल (ग) गोदावरी पुल

६. टेलीफोन का आविष्कार किसने किया?
(क) वाटसन (ख) फ्लेमिङ्ग (ग) बेल

अगर न बता सको तो जवाब
के लिए ५२-वाँ पृष्ठ देखो।

फोटो परिचयोक्ति-प्रतियोगिता

अक्तूबर १९५२ :: पारितोषक १०)

ऊपर के फोटो अक्तूबर के अङ्क में छापे जाएँगे। इनके लिए उपयुक्त परिचयोक्तियाँ चाहिए। नियम ये हैं:

१. परिचयोक्ति फोटो के उपयुक्त हो।

२. उसमें एक या तीन-चार शब्द से ज्यादा न हों।

३. सबसे प्रधान विषय यह है कि पहले और दूसरे फोटो की परिचयोक्तियों में परस्पर सम्बन्ध हो।

४. एक व्यक्ति परिचयोक्तियों की एक ही जोड़ी भेज सकता है।

५. परिचयोक्तियाँ, पूरे नाम और पते के साथ कार्ड पर लिख कर भेजनी चाहिए।

६. परिचयोक्तियाँ १५ अगस्त के अन्दर हमें पहुँच जानी चाहिए। उसके बाद आने वाली परिचयोक्तियों की गिनती नहीं होगी।

७. हमारे पास आई हुई परिचयोक्तियों की सर्वोत्तम जोड़ी के लिए १०) का पुरस्कार दिया जाएगा।

परिचयोक्तियाँ भेजने का पता:

फोटो-परिचयोक्ति-प्रतियोगिता

चन्दामामा प्रकाशन

पोस्ट वडपलनी : मद्रास-२६

रङ्गीन चित्र-कथा, पहला चित्र

फ़ारस के बादशाहों में हसन बदायूँ का नाम सबसे ज्यादा मशहूर था। उसकी हुकूमत में फारस के लोग बहुत सुखी थे। किसी को किसी चीज़ की कमी न थी। सारा संसार जानता था कि हसन के राज में गरीबी और भुखमरी को स्थान नहीं है।

बादशाह हसन को ललित कलाओं से और नृत्य-गीत से बहुत प्रेम था। उसने अपने महल के पास ही एक सुन्दर उद्यान की शोभा बढ़ाने के लिए बहुत सा रुपया खर्च किया था। बादशाह का वह उद्यान इतना सुन्दर था कि उसे देखने के लिए दूर-दूर के देशों से यात्री लोग आया करते थे। उस उद्यान को देख कर वे लोग बहुत चकित हो जाते और उसकी प्रशंसा करते हुए घर लौटते थे। इस तरह उस उद्यान की बड़ाई सारे संसार में फैल गई।

लोग उस उद्यान की और उसके स्वामी की प्रशंसा तो करते ही थे। लेकिन वे उससे भी ज्यादा प्रशंसा करते थे एक बुलबुल की जो उस उद्यान में गाया करती थी। जिन लोगों ने उस बुलबुल का गाना सुना था उनका कहना था कि उसके गान के सामने हसन की बादशाहत भी कुछ नहीं। उन लोगों ने उस बुलबुल की प्रशंसा में बहुत सी किताबें भी लिख डालीं।

धीरे धीरे बादशाह हसन को भी उस बुलबुल की बात मालूम हुई। उसने कहा—'वाह! मेरे बगीचे में ऐसी मशहूर बुलबुल रहती है और मुझे उसके बारे में किसी ने बताया भी नहीं! यह कैसी बात है? कल ही उस बुलबुल को पकड़ लाओ। मैं उसका गाना सुनना चाहता हूँ!' यह कह कर उसने वज़ीरों को खूब फटकारा और उस बुलबुल को दरबार में हाज़िर करने का हुक्म दिया।

मियाँ घमण्डी का मुँह काला !

रमाकान्त 'विक्षिप्त'

*

किसी गाँव में मियाँ एक थे रहते लम्बी दाढ़ी वाले।
रोज़ गाँव की गलियों में वे चलते थे होकर मतवाले।
रही डेढ़ फुट तक ठोड़ी से लटकी उनकी लम्बी दाढ़ी।
जिससे आलिम समझें उनको सब, कोई समझे न अनाड़ी।
खूब अकड़ते थे वे सबसे, रग-रग में बस, गर्व भरा था।
ऐंठ-ऐंठ कर चलते सीना उनका आगे को उभरा था।
इतने झगड़ालू, पड़ोसियों से न कभी उनकी पटती थी।
चोंचदार टोपी उनके सर से न कभी पलभर हटती थी।
'मूर्ख मियाँ, लम्बी दाढ़ी' कह सब कोई थे उन्हें चिढ़ाते।
वे बड़बड़ाते हुए झुँझला कर, घर में चुप हो घुस जाते।
वे चक्कर में रहते थे—क्यों 'मूर्ख मियाँ' मुझको सब कहते ?
परेशान हो गए बिचारे ऐसी बातें सहते-सहते।
एक रोज़ इन 'मूर्ख मियाँ' ने चौखट पर जब परचा पाया,
पढ़ कर जल-भुन गए क्रोध से, दाढ़ी पर झट गुस्सा आया।
उसमें साफ लिखा उरदू में, अक्षर भी थे काले-काले—
'मूरख कहलाते वे ही, जो होते लम्बी दाढ़ी वाले।'
कहा मियाँ ने—'कर लूँ दाढ़ी छोटी, मूर्ख न कहलाऊँगा।
मूर्ख नहीं मैं, दाढ़ी छोटी कर सबको यह जतलाऊँगा।'
दौड़ हाट से माचिस लाए, आग लगा दाढ़ी में डाली।
जब मुँह जला—'मूर्ख हूँ मैं' कह जल से ठोडी तुरत नहा ली।
लेकिन पल भर में ही उनके मुख पर पड़ा भयानक छाला।
हुई कहावत सिद्ध बालको ! 'मियाँ घमण्डी का मुँह काला।'

फोटो - परिचयोक्ति - प्रतियोगिता

सितम्बर की परिचयोक्तियाँ

*

सितम्बर के फोटो के लिए निम्न-लिखित परिचयोक्तियाँ चुनी गई हैं। इनके प्रेषक को १०, पुरस्कार मिलेगा।

परिचयोक्तियाँ :

पहला फोटो : 'रार'
दूसरा फोटो : 'प्यार'

प्रेषक : मुरारी मोहन पाण्डेय, पटना

ये पुरस्कृत परिचयोक्तियाँ प्रेषक के नाम सहित सितम्बर के चन्दामामा में प्रकाशित होंगी। सितम्बर के अङ्क के प्रकाशित होते ही पुरस्कार की रकम भेज दी जाएगी।

अक्तूबर की प्रतियोगिता के लिए ४९-वें पृष्ठ में देखिए।

एक अनिवार्य सूचना :
परिचयोक्तियाँ सिर्फ़ कार्ड पर ही भेजी जानी चाहिए। कागज़ पर लिख कर, लिफ़ाफे के अन्दर रख कर भेजी जाने वाली परिचयोक्तियों पर कोई ध्यान न दिया जाएगा।

चन्दामामा पहेली का जवाब :

'मैं कौन हूँ' का जवाब :

'आगमन'

'बताओ तो' का जवाब :

१. (ख) २. (क)

३. (ग) ४. (ख)

५. (क) ६. (ग)

Printed by B. NAGIREDDI at the B. N. K. Press Ltd., Madras 26, and Published by him from Chandamama Publications, Madras 26, Controlling Editor: SRI CHAKRAPANI

Chandamama, August '52

Photo by R. Krishnan

सचल

रङ्गीन चित्र - कथा, चित्र — १